जुलाई – 2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 | अंक – 7 | प्रति – ₹ 25 | ₹–300 वार्षिक

10 गुरु बिनु ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिनु मिलै न मोक्ष

29 सकारात्मक सोच से मिलती है सफलता

49 नाशवान होता है राजसी तप

63 श्रद्धा एवं पात्रता के जागरण का पर्व

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

जुलाई- 1948

अखण्ड ज्योति (जुलाई–1948) पृष्ठ संख्या–4

गायत्री भोजन जैसी उपयोगी इसलिए है कि उसमें आत्मिक बल का केंद्र है। बुद्धि की शुद्धि, उदर शुद्धि से भी अधिक आवश्यक है। पेट में मल भरे हों, विषैले पदार्थ जमा हों तो शरीर का स्वास्थ्य दिनोंदिन क्षीण होता जाएगा, भले ही कीमती भोजनों को खाया जाता हो, इसी प्रकार यदि बुद्धि अशुद्ध है, विकृत है, नीच तत्त्वों में लिप्त है तो उस बुद्धि से आत्मकल्याण नहीं हो सकता, सुख– शांति का दर्शन नहीं हो सकता, चाहे कोई कितना ही बड़ा, कितना ही मूल्यवान कर्मकांड क्यों न करें। उदर की शुद्धि होने पर किया हुआ भोजन शुद्ध रक्त बनाता है और बल, वीर्य की वृद्धि करता है, इसी प्रकार शुद्ध बुद्धि से किए गए कार्य एवं विचार ही आत्मबल को बढ़ाने एवं आत्मकल्याण की ओर ले जाने वाले होते हैं। यदि किसी झरने के उद्गम में विष की खान हो तो उसका जल देखने में चाहे कितना ही शीतल, स्वच्छ, स्वादिष्ट क्यों न हो, पर उसको पीने से अनिष्टकर परिणाम ही उत्पन्न होगा, अशुद्ध बुद्धि का भी यही हाल है, उससे चाहे कैसे ही चमत्कारी कार्य क्यों न कर दिखाए जाएँ, चाहे कितना ही धन, यश, वैभव इकट्ठा कर लिया जाए, पर परिणाम बुरा ही होगा। इसलिए मूलकेंद्र को शुद्ध करना, अन्य सब कार्यों की अपेक्षा अधिक उपयोगी देखकर उसकी अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है और गायत्री-साधना को भोजन करने जैसा दैनिक कृत्य नियुक्त किया गया है।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

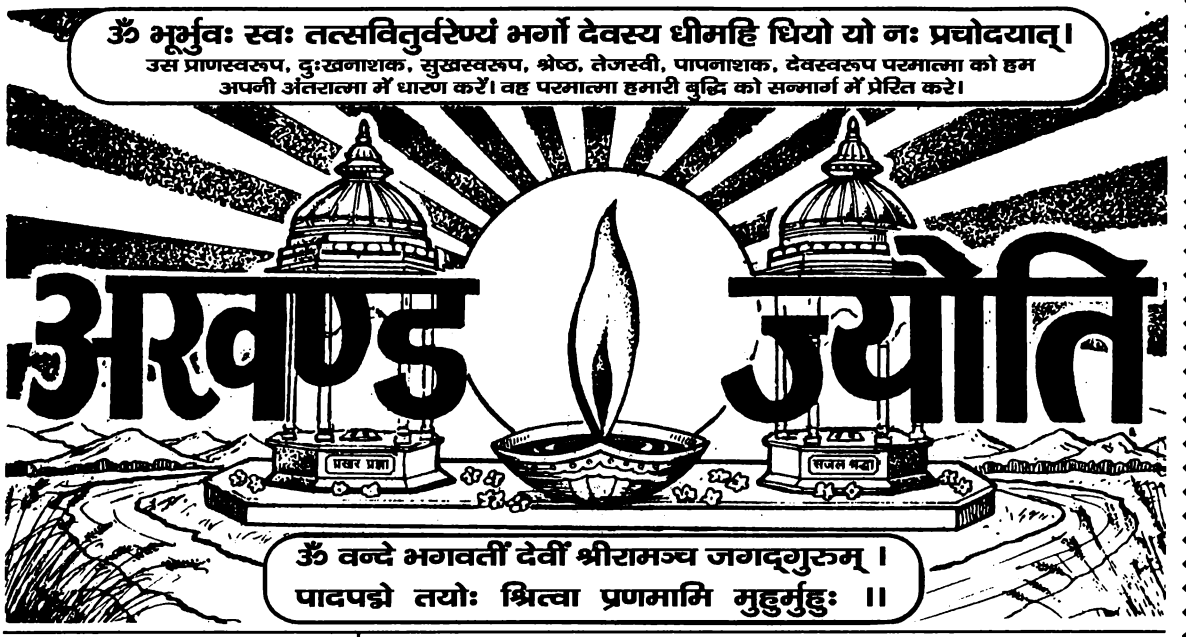

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-वृंदावन रोड, बिरला मंदिर के सामने जयसिंहपुरा, मथुरा-281003
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	07
जुलाई	:	2023
आषाढ-श्रावण (प्र.)	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.06.2023
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

परमेश्वर

इस व्यापक, अनंत सृष्टि का रचयिता एक ही है। इसके निर्माण में न उसे सहयोगी की आवश्यकता है और न साझेदारी की। उसके प्रति भावों की भिन्नता के कारण उसको पुकारने वाले नाम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, पर इससे उसकी सत्ता भिन्न नहीं हो जाती। वैसे भी व्यापक शक्ति निराकार ही हो सकती है। जिसका आकार होगा, वह तो सीमित और संकीर्ण हो जाएगा; परंतु शुद्ध, शाश्वत, निर्विकार, निर्विचार, निष्कलंक सत्ता तो विराट, व्यापक एवं अनिर्वचनीय ही हो सकती है।

इसीलिए आप्तवचनों में कहा गया कि **'न तस्य प्रतिमा नास्ति'**—उस परमेश्वर की कोई प्रतिमा नहीं है। यह वचन पूर्णतया सत्य भी है। उस अलौकिक सत्ता के स्वरूप व छवि का वर्णन असंभव ही हो जाता है। शास्त्रों में ऐसा वचन भी आता है कि **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**—अर्थात उस एक परमेश्वर को ही विद्वानों ने बहुत प्रकार से कहा है। उस सर्वव्यापी परमेश्वर की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का आधार भी नैतिक, आध्यात्मिक नियमों का पालन ही हो सकता है। पीड़ा व पतन का निवारण, दुखियों के दुःख दूर करना व पतितों को राह दिखाना—यही उस शाश्वत सत्ता से संबंध स्थापित करने का मार्ग हो सकते हैं। सही अर्थों में यही धर्म की परिभाषा भी है। ❐

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

- आवरण-1 — 1
- आवरण-2 — 2
- परमेश्वर — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  'स्व' की वैज्ञानिक अवधारणा — 5
- **पर्व विशेष—गुरु पूर्णिमा**
  समर्पण है शिष्यत्व का आधार — 8
- गुरु बिनु ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिनु मिलै न मोक्ष — 10
- एकत्व — 14
- समाधि में होती है ब्रह्मानंद की अनुभूति — 15
- ईश्वर को पाना ही है जीवन का परम लक्ष्य — 22
- निष्काम भक्ति ही है श्रेष्ठ भगवद्भक्ति — 24
- व्यावहारिक अध्यात्म के पंचशील — 26
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—10**
  सादगी भरा जीवन — 28
- सकारात्मक सोच से मिलती है सफलता — 29
- विज्ञान की सीमा — 32
- जन्म-मृत्यु एवं जीवन का शाश्वत प्रवाह — 35
- भारतीय पर्व-उत्सव — 38
- **चेतना की शिखर यात्रा—250**
  गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं — 39
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—171**
  सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव — 43
- अर्थव्यवस्था का आधार है गोधन — 46
- **युगगीता—278**
  नाशवान होता है राजसी तप — 49
- सफेद सोने से बदलेगी तकदीर देश की — 53
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  इस युग के भगीरथ (पूर्वार्द्ध) — 55
- **विश्वविद्यालय परिसर से—217**
  अभिनव कार्यक्रमों का केंद्र बना विश्वविद्यालय — 60
- **अपनों से अपनी बात**
  श्रद्धा एवं पात्रता के जागरण का पर्व — 63
- गुरुसत्ता को नमन करें (कविता) — 66
- आवरण-3 — 67
- आवरण-4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

सदाशिव शंभू हमारे गुरुदेव

जुलाई-अगस्त, 2023 के पर्व-त्योहार

सोमवार	03 जुलाई	गुरु पूर्णिमा	मंगलवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस
गुरुवार	13 जुलाई	कामिका एकादशी	शनिवार	19 अगस्त	हरियाली तीज
सोमवार	17 जुलाई	सोमवती अमावस्या	सोमवार	21 अगस्त	नाग पंचमी
सोमवार	24 जुलाई	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	22 अगस्त	सूर्य षष्ठी
शनिवार	29 जुलाई	कमला एकादशी	बुधवार	23 अगस्त	तुलसी जयंती
मंगलवार	01 अगस्त	पूर्णिमा	रविवार	27 अगस्त	पवित्रा एकादशी
शनिवार	12 अगस्त	कमला एकादशी	गुरुवार	31 अगस्त	रक्षाबंधन

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

'स्व' की वैज्ञानिक अवधारणा

हमारे जीवन के कुछ ऐसे पहलू हैं, जिन्हें हम लगभग सुनिश्चित मानकर चलते हैं। हो सकता है कि हमारे आस-पास के परिवेश या वातावरण में कुछ ऐसे तत्त्व या आयाम हों, जिनको कि हम पूर्ण विश्वास के साथ न मानते हों, परंतु हमारे स्वयं के अस्तित्व को, 'हम हैं' इस भाव को तो जीवन्मुक्त व्यक्तित्व के अतिरिक्त लगभग हर कोई मानकर के ही चलता है। दार्शनिक दृष्टि से यदि कोई अपने होने के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाता है तो भी यह प्रश्न उठता है कि प्रश्नचिह्न लगाने वाला आखिर कौन है? वह कौन है, जो अपने या किसी अन्य के अस्तित्व पर शंका व्यक्त कर रहा है?

अभी तक इस तरह की जिज्ञासाएँ दार्शनिक एवं बौद्धिक मनोविनोद का हिस्सा हुआ करती थीं, परंतु विगत दिनों वैज्ञानिकों द्वारा इस विषय पर किए गए शोधों के परिणाम अविस्मरणीय आए हैं, जिनमें 'स्व' को परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। उन शोधों की गहराई में जाने से पूर्व इस विषय में चिंतन कर लेना अनिवार्य होगा कि हम 'स्व' को सामान्य रूप से कैसे परिभाषित करते रहे हैं, क्योंकि हमारी अपने प्रति मान्यताओं के कुछ सार्वभौम आधार सदा से हमारे जीवन का हिस्सा रहे हैं।

पहला तो यह कि हम स्वयं को अपरिवर्तनशील एवं नित्य मानते हैं। हमारे स्वयं के अस्तित्व पर विश्वास करने के मूल आधारों में से यह एक है। इस मान्यता का अर्थ यह नहीं कि हम यह मानते हैं कि हममें या हमारे व्यक्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता, वरन इस मान्यता का आधार यह है कि हमारे साथ घटने वाले बाह्य परिवर्तनों के मध्य में हमारे भीतर कुछ या कोई ऐसा है, जिसे हम सदा अपरिवर्तनशील मानते हैं।

दूसरा, हमारा 'स्व' हमारी दृष्टि में एक समन्वयकर्त्ता की भूमिका निभाता है। जैसे, हमारी आँखें अपने आप में अकेले केवल देखने का कार्य करती हैं, कान सुनने का, नाक सूँघने का, त्वचा स्पर्श का और अन्य सभी अंग भी अलग-अलग अपने-अपने निर्धारित कार्यों को संपादित करते हैं, पर जिसे हम 'स्व' के नाम से पुकारते हैं—वह 'स्व' इन सारी भिन्न-भिन्न सूचनाओं, अनुभवों, अनुभूतियों को एकत्र करके, एक समझने योग्य, बोधगम्य अनुभव में बदलता है।

तीसरा हमारी दृष्टि में 'स्व' वह है, जो कर्त्ता की भूमिका का निर्वहन करता है। चाहे मन में उठने वाले विचार हों या हृदय में अनुभव होने वाली भावनाएँ—जब उनके ऊपर क्रियान्वयन करने का समय आता है तब 'स्व' ही है, जो कर्त्ता के रूप में, कर्म करने वाले के रूप में उभरकर सामने आता है। सतही दृष्टि से देखने पर संभवतया यही वो कुछ प्रमुख गुण हैं, जिन्हें कोई 'स्व' को परिभाषित करते समय सूची में अवश्य रखना चाहेगा।

विगत दिनों वैज्ञानिक जगत् में हुए शोधों ने इन मूलभूत या आधारभूत विश्वासों पर कुछ ऐसा प्रहार किया है कि अब लगता है कि आधुनिक विज्ञान भी वेदांत दर्शन की भाषा को बोल रहा हो। उदाहरण के तौर पर इस वैज्ञानिक तथ्य से सभी परिचित हैं कि प्रकाश की गति, ध्वनि की गति से कई गुना तीव्र होती है और इसीलिए हमें कोई

घटना घटती पहले दिखाई पड़ती है, परंतु उससे संबंधित ध्वनि बाद में अनुभव होती है।

वैज्ञानिक लंबे समय से इस विषय पर शोध कर रहे थे कि इन दोनों भिन्न-भिन्न संवेदनों को हमारा मस्तिष्क एक साथ किस तरह समायोजित करता है कि यह हमको एक समग्र अनुभव की तरह प्रतीत हो।

यह एक रोचक तथ्य है कि विगत शोधों का यह परिणाम निकलकर आया है कि वे ये इशारा करते हैं कि हम इनका निर्णय अंतर्ज्ञान या यों कहें कि इन्ट्यूशन के आधार पर लेते हैं। यदि यह एक ऐसा अनुभव है, जिसे मस्तिष्क पहले कभी कर चुका है तो वो दो अलग-अलग संवेदनों को एक करने का निर्णय अपने आप ले लेता है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए वैज्ञानिकों ने एक सामान्य-सा परीक्षण पहले किया, जिसे अब 'बीटा फीनोमिना' के नाम से जाना जाता है।

इसमें व्यक्ति को पहले एक स्क्रीन के कोने में एक चमकीला धब्बा जैसा दिखाया गया, जिसके तुरंत बाद वैसे ही धब्बे को उससे भिन्न स्थान पर प्रकाशित किया गया। यद्यपि ये दोनों अलग-अलग अनुभव थे, परंतु हमारा मस्तिष्क इनको एक निरंतरता में अनुभव करता है और उसे ऐसा लगता है कि मानो वही धब्बा स्क्रीन में अनेक स्थान पर घूम रहा है।

परिणाम से यह स्पष्ट था कि दो भिन्न संवेदनों के मध्य के रिक्त स्थान को भरने का कार्य मस्तिष्क अपने आप ही कर देता है। इसका अर्थ यह है कि हमारा 'स्व' अपने अनुसार संवेदनों के एकत्रीकरण एवं एकसूत्रीकरण का कार्य करता है। यदि ऐसा है तो प्रश्न उभरता है कि हमारे अनुभवों में क्या सत्य और क्या मिथ्या?

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि संभवतया मस्तिष्क में अनेक तंत्रिकाएँ बिना किसी केंद्रीकृत व्यवस्था के इस कार्य को कर देती हों। इसी सिद्धांत को मनोवैज्ञानिक भी अब आत्ममुग्धता या आत्मभ्रम, जिसे चिकित्सकीय भाषा में सेल्फडिल्यूशन कहा जाता है, उसे समझने में करने लगे हैं।

मनोचिकित्सकीय दृष्टि से यह सदा शोध का विषय रहा है कि आखिर किस कारण से एक व्यक्ति भ्रम का शिकार होता है और होते समय उसके 'स्व' को इसका अनुमान क्यों नहीं लग पाता कि यह विश्वास भ्रामक है। ऐसे भ्रम ही सिजोफ्रेनिया से लेकर अन्य साइकोटिक मनोरोगों का कारण बनते हैं और कभी-कभी तो ये भ्रामक विश्वास व्यक्ति के लिए जानलेवा सिद्ध होते हैं।

वैज्ञानिक शोध अब यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ऐसा इसलिए, क्योंकि यह भ्रम मन से हटकर किसी अन्य व्यवस्था द्वारा निर्धारित होता है और मन तो मात्र उसके क्रियान्वयन का आधार बनता है, पर क्या ये अन्य तत्त्व भारतीय योग विज्ञान में वर्णित चित्त नहीं है?

योगसूत्र में इसीलिए महर्षि पतंजलि ने चित्त एवं चित्त की भूमियों की व्याख्या कर्म-संस्कार के आधार पर की है। उस दृष्टि से देखने पर मनोचिकित्सा में वर्णित 'डिपर्सनलाइजेशन डिसऑर्डर' को समझना भी आसान हो जाता है, जिसमें व्यक्ति अपने को आस-पास के परिवेश से विच्छिन्न पाता है।

फिर वैज्ञानिक शोधों के आधार पर एक और प्रश्न उभरता है, जिसे भारतीय दर्शन सदा से परिभाषित करता रहा है। यह प्रश्न इस बात का है कि यद्यपि हम स्वयं को या 'स्व' को सदा वर्तमान में मानते रहे हैं, परंतु विगत दिनों हुए वैज्ञानिक शोधों ने यह प्रमाणित किया है कि

'फ्लैश-लेग इल्यूशन' में हमारा मस्तिष्क अतीत की घटनाओं को वर्तमान में अनुभव कर रहा होता है। यही कारण है कि पुरानी स्मृतियाँ कभी-कभी इतनी ताजा लगती हैं कि मानो तुरंत ही घटी हों। यह शोध भी भारतीय चिंतन के इस भाव की पुष्टि करता है कि समय एवं काल दो भिन्न आयाम हैं।

इसके साथ ही वैज्ञानिक शोधें ये भी प्रमाणित करती हैं कि हम यदि 'स्व' के रूप में अपने शरीर के भीतर ही स्थित होते तो 'हिप्नोगोगिक' या 'हिप्नोपोम्पिक' जैसे अनुभव इनसान को नहीं होते, जिसमें व्यक्ति को लगता है कि वह कुछ देर के लिए अपने शरीर से बाहर निकल गया है।

प्रश्न उठता है कि यदि 'स्व' शरीर के भीतर स्थित है तो फिर वह कौन है, जो शरीर से बाहर निकलने का अनुभव करता है। कुछ ऐसा ही अनुभव महर्षि रमण को अपने बचपन में हुआ था। भारतीय अध्यात्म की दृष्टि से तो यह स्व या आत्मा, सदा से मन से भिन्न रहा है। यह एक सुखद बदलाव है कि अब विज्ञान भी धीरे-धीरे उसी भाषा को अपना रहा है। संभवतया पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक अध्यात्म की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा। ❑

रामकृष्ण परमहंस बहुधा एक कथा कहा करते थे कि एक आदमी जंगल से जा रहा था, उसे तीन डाकुओं ने पकड़ लिया। उन्होंने उसे लूट लिया तब एक डाकू बोला—"इसे जीवित रखकर क्या लाभ? इसे मार डालते हैं।" दूसरा बोला—"नहीं, इसके हाथ-पैर बाँधकर छोड़ देते हैं।" तीसरे डाकू को उस पर दया आ गई और वह उसके बंधन खोलकर सड़क तक पहुँचा आया।

रामकृष्ण बोलते थे कि यह संसार भी ऐसा ही जंगल है, जिसमें सत्त्व, रज और तम तीन डाकू रहते हैं, ये जीवों का तत्त्वज्ञान छीन लेते हैं। तमोगुण मारना चाहता है, रजोगुण संसार में फँसाता है और सतोगुण रज और तम से बचाता है। तमोगुण और रजोगुण जिस भवबंधन में बाँधते हैं, उसे सतोगुण काट डालता है, पर तत्त्वज्ञान वह भी नहीं दे सकता। वह जीव को परम धाम जाने की सड़क तक तो पहुँचा सकता है, पर उसके आगे की यात्रा बिना किसी गुण का आश्रय लिए ही पूर्ण होती है। इसीलिए परमात्मा को त्रिगुणातीत कहा गया है, जो त्रिगुणों से पार हैं और जहाँ तक प्रकृति के बंधन पहुँच नहीं सकते।

पर्व विशेष – गुरु पूर्णिमा

समर्पण है शिष्यत्व का आधार

सूर्य में कितना भी प्रकाश हो, यदि आँख की पुतलियाँ कार्य न करें तो व्यक्ति को मात्र अंधकार ही सर्वत्र छाया दिखाई पड़ेगा। उसके लिए सुबह के सूर्योदय और रात्रि के अँधेरे में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ेगा। कुछ ऐसा ही उस व्यक्ति के साथ घटेगा, जो सुनने की क्षमता को गँवा बैठा है, उसके लिए सुमधुर संगीत-लहरियाँ भी मूल्यविहीन ही प्रतीत होंगी। स्वाद अनुभव करने की क्षमता खो बैठने के बाद व्यक्ति के लिए स्वादिष्ट व्यंजन और अधपके भोजन में जरा भी अंतर नहीं रह जाता है।

यही सत्य उन शिष्यों पर भी लागू होता है, जो समर्थ गुरु के होते हुए भी स्वयं में शिष्यत्व का अभाव होने के कारण उसके अनुग्रह को पाने से वंचित रह जाते हैं। यदि शिष्य के अंदर पात्रता का अभाव हो तो गुरु कितना भी दिव्य शक्तिसंपन्न क्यों न हो, शिष्य उनको प्राप्त करने से चूक ही जाता है। इसलिए गुरु के मूल्य, महत्त्व को जानने के लिए शिष्य में ही पात्रता का होना अनिवार्य योग्यता के रूप में हो जाता है। उसके अभाव में शिष्य के लिए कुछ भी मूल्यवान प्राप्त करना कभी भी संभव नहीं हो पाता।

सद्गुरु की इसी जीवन में प्राप्ति एक ऐसे अद्भुत सौभाग्य के रूप में है, जो जन्म-जन्मांतर के तप-पुण्य के फलित होने पर ही व्यक्ति को मिल पाता है। उसके संपूर्ण महत्त्व को प्राप्त करने के लिए शिष्य को शिष्यत्व की परीक्षा पर खरा उतरना पड़ता है। स्वयं की क्षुद्रता को गुरु की गुरुसत्ता में विसर्जित करना पड़ता है। हम सबके जीवन में, गायत्री परिजन होने के नाते एक सौभाग्य सहज ही प्राप्त हुआ और वो पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी से जुड़ने के नाते प्राप्त हुआ।

सद्गुरु वह होता है, जिसका स्पर्श पाते ही चेतना ऊर्ध्वगमन के लिए अकुलाने लगती है। एक ऐसे ही महापुरुष, अवतारी चेतना से जुड़ पाने का सौभाग्य हम लोगों को भी मिला। हममें से अनेकों के जीवन उनकी प्राण-ऊर्जा से फलित व पोषित होते रहे हैं। ऐसे में कभी-कभी उस दिव्य सौभाग्य को स्मरण करना अनिवार्य हो जाता है, जो पूज्य गुरुदेव से जुड़ने के नाते हम लोगों को सहज ही प्राप्त हुआ है।

ऐसे में कभी-कभी कुछ लोगों को ऐसा भी लग जाया करता था कि इतनी बड़ी विभूति हमें घर बैठे ही कैसे मिल गए? आख्यानों में तो समर्थ गुरु की प्राप्ति के लिए बहुत से भटकावों से गुजरने का विवरण मिलता है। एक बार किसी ने पूज्य गुरुदेव से ऐसा प्रश्न कर भी लिया तो पूज्य गुरुदेव ने उत्तर दिया—"बेटा! हमारा-तुम्हारा संबंध एक दिन का नहीं है। इसके लिए लंबे समय से जन्म-जन्मांतरों में पात्रता के अर्जन के लिए तैयारी की गई है। हमने तुम लोगों से संबंध बनाने में उतावली किसी भी तरह की नहीं बरती है।"

पूज्य गुरुदेव का कहा बिलकुल स्पष्ट था कि बिना शिष्यत्व को साधे किसी तरह का सुपरिणाम हस्तगत नहीं हो पाता है। शिष्यत्व का उद्देश्य बूँद की तरह से स्वयं को समुद्र में अर्पित कर देने से है। जो जीवन को गुरु के चरणों में श्रद्धांजलि की तरह से सौंप देने का जज्बा रखते हैं, वे ही गुरु की अनुकंपा-आशीर्वाद की प्राप्ति के हकदार बन पाते हैं।

प्रश्न पूछने वाले सज्जन के मन में कुछ ऐसे ही विचार उमड़-घुमड़ रहे थे। वे सोचने लगे कि स्वयं पूज्य गुरुदेव ने भी तो अपने जीवन में कितनी प्रतिकूलताओं का सामना किया, पर इन सबके बावजूद उनका समर्पण, विश्वास यथावत् बने रहे। सच्चे शिष्य को कुछ इसी तरह की परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है।

वे सज्जन महसूस कर रहे थे कि समय पात्रता विकसित करने में लगता है, गुरु का आशीर्वाद पाने में नहीं। उन्होंने अपनी जिज्ञासा पुनः पूज्य गुरुदेव के सामने अभिव्यक्त की और उनसे पूछने लगे—"गुरुदेव! आपको भी तो अपने शिष्यत्व की परीक्षा कई बार देनी पड़ी होगी?"

पूज्य गुरुदेव ने तुरंत ही उत्तर दिया—"क्यों नहीं बेटा! लोग गुरु को अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करने का साधन मानकर बैठ जाते हैं। उसे मनमरजी से चलाना चाहते हैं, पर साधनात्मक जीवन में ऐसी विडंबना संभव नहीं होती। सच्चे शिष्यत्व की शुरुआत और उसकी परिणति अपनी समस्त इच्छाएँ-कामनाएँ गुरु के आगे विसर्जित करने से होती है। मेरे गुरु ने मुझे धोबी की तरह पीट-पीटकर धुला है, धुनिए की तरह मेरी धुनाई की है। इससे कम में गुरु की अनुकंपा नसीब नहीं होती है।"

पूछने वाले कार्यकर्त्ता के मन में संत कबीर के लिखे शब्द गूँजने लगे कि—

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है
गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे
बाहर मारे चोट॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा
साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइए
निकसै जोति अपार॥
यह तन विष की बेलरी
गुरु अमृत की खान।
जनम-जनम का काचरा
पल में कर दे साफ॥

उन्होंने पूज्य गुरुदेव से पूछा—"गुरुदेव! इतनी कठिन परीक्षा से गुजरने के बाद क्या शिष्य का कल्याण होता है? कहीं उसका मनोबल टूट तो नहीं जाता है?"

गुरुदेव बोले—"नहीं बेटा! यह घाटे का नहीं, बल्कि असंख्य गुने लाभ का सौदा है। हमने अपने गुरु के हाथों में स्वयं को, अपने शरीर को और अपने मन को बेच दिया। बदले में उन्होंने भी स्वयं को हमारे हाथों में सौंप दिया। हमने स्वयं की तुच्छता उनके चरणों में समर्पित की और बदले में उन्होंने अपनी सारी महानता को हमारे ऊपर निछावर कर दिया।"

गुरुदेव के शब्दों को सुनते हुए उन सज्जन को लगा कि सही में गुरु-शिष्य के मध्य संबंध का आधार इसी तरह के संबंध से तो है। बाँस का टुकड़ा बाँसुरी के रूप में स्वयं को भगवान के अधरों को सौंप देता है तो कितनी मनमोहक राग-रागिनियाँ उसमें से निकलने लगती हैं। उधर गुरुदेव के मुख से निकलने वाले अंतिम शब्द भी कुछ ऐसे ही समर्पण की ओर इशारा कर रहे थे।

पूज्य गुरुदेव यह कह रहे थे कि गुरु के चरणों में जब हमने स्वयं को समर्पित कर दिया, तब अपनी इच्छा का कोई अस्तित्व न रहा। उसी की तरह हर इच्छा जब अपनी इच्छा बन गई तो वह स्थिति ब्रह्म और जीव के मिलन में आने वाले ब्रह्मानंद की तरह अति सुखद लगने लगी। हमारा समर्पण हमारे लिए घाटे का नहीं, नफे का सौदा सिद्ध हुआ।

उसी समर्पण को अपने जीवन का अंग बनाकर, वे सज्जन पूज्य गुरुदेव के चरणस्पर्श कर वहाँ से लौट पड़े। वही समर्पण गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व का आधार है। ❑

गुरु बिनु ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिनु मिलै न मोक्ष

गुरु ही माता हैं, गुरु ही पिता हैं, गुरु ही बंधु हैं, गुरु ही सखा हैं, गुरु ही विद्या हैं और गुरु ही गोविंद हैं। सचमुच गुरु की महिमा अपार है। उनकी महिमा शब्दों से परे है। जब गुरुकृपा से शिष्य को आत्मज्ञान की परम उपलब्धि हो जाती है, तब शिष्य के हृदय में आत्मज्ञान का परम प्रकाश वैसे ही फैलता है, जैसे सूर्य के आगे सूर्य का अपना प्रकाश फैलता है।

तब उस अवस्था में शिष्य दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। वह जन्म-मरण के चक्रव्यूह को तोड़कर सदा के लिए मुक्त हो जाता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को पा लेता है, पहचान लेता है और उसी में अवस्थित हो जाता है।

इसलिए कहा गया है कि त्रिलोक में गुरु के समान कोई उपकारी नहीं, गुरु के समान कोई परोपकारी नहीं, गुरु के समान कोई दाता नहीं। तभी तो गुरु की महत्ता को प्रकाशित करते हुए संत कबीर ने कहा है—

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान॥
गुरु बिनु ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिनु मिलै न मोष।
गुरु बिनु लखै न सत्य को, गुरु बिनु मिटै न दोष॥
कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
जन्म-जन्म का काचरा, पल में डारै धोय॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट॥
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिनु मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्य शब्द परमान॥

अर्थात गुरु के समान कोई दाता नहीं और शिष्य के सदृश याचक नहीं। गुरु ने त्रिलोक की संपदा से भी बढ़कर आत्मज्ञान अपने शिष्य को दान कर दिया। ऐसे सद्गुरु के बिना शिष्य में ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। गुरु के बिना मोक्ष नहीं मिलता। गुरु के बिना कोई सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता और गुरु के बिना तन, मन, वचन के दोष मिटते नहीं। शिष्य कुबुद्धिरूपी कीचड़ से भरा है और उस कीचड़ को धोने के लिए गुरु का ज्ञान ही जल है।

शिष्य के जन्म-जन्मांतरों की बुराई, दोष आदि गुरु क्षण भर में ही नष्ट कर देते हैं। गुरु कुम्हार हैं और शिष्य घड़ा है। गुरु घड़ेरूपी शिष्य को कुम्हार की तरह अपने हाथ का सहारा देकर और बाहर से चोट मार-मारकर तथा गढ़-गढ़कर शिष्य की बुराइयों, दोषों को दूर कर उसे सुगढ़, सुंदर और श्रेष्ठ बना देते हैं। ऐसा देखा गया है कि बड़े-बड़े विद्वान शास्त्रों को पढ़-पढ़कर ज्ञानी होने का दंभ भरते फिरते हैं, पर वास्तव में गुरु के बिना उन्हें ज्ञान नहीं मिलता और ज्ञान के बिना मुक्ति भी नहीं मिलती।

यह स्पष्ट है कि ज्ञान के अभाव में व्यक्ति अज्ञानरूपी अँधेरे में भटकता फिरता है, ठोकरें खाता है, दुःख पाता है और जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसकर जन्म-जन्मांतरों तक रोता-बिलखता रहता है। इन सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर परम आनंद की अवस्था को पाने के लिए आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान ही एकमात्र उपाय है और उसकी उपलब्धि के लिए किसी आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी गुरु का मार्गदर्शन, संरक्षण भी आवश्यक है।

प्रश्न यह उठता है कि ऐसे आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी गुरु हमें मिलेंगे कहाँ और कैसे? यह प्रश्न तो उचित ही है; क्योंकि ऐसे आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी गुरु तो विरले ही होते हैं। आज संसार में गुरु के नाम पर, गुरु भेष में अगणित लोग दिख पड़ते हैं, पर उनमें आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का लेश मात्र भी नहीं होता।

ऐसे गुरु को यदि हमने पा भी लिया तो उससे हमारा कोई भी प्रयोजन सिद्ध होने से रहा; क्योंकि जो स्वयं आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान से विमुख हैं और स्वयं बंधन में हैं, वे हमें बंधनमुक्त कैसे कर सकते हैं? जो स्वयं ही अहंकार, काम, क्रोध, मोह, लोभ में आकंठ डूबे हुए हैं, वे हमें उससे मुक्त कैसे कर सकते हैं?

जो स्वयं संसार सागर में डूब रहे हैं, वे हमें उससे पार कैसे कर सकते हैं? जो स्वयं अहंकार और क्रोध में दिन-रात जल रहे हैं, वे हमें फिर उनसे कैसे बचाएँगे? इसलिए ऐसे गुरुओं से हमें दूर रहना चाहिए; क्योंकि ऐसे लोग हमारा मार्गदर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकते और उलटे हमें हानि ही पहुँचाएँगे। इसलिए संत कबीर ने भी हमें सावधान, सचेत करते हुए कहा है—

गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहि।
भवसागर के जाल में, फिर-फिर गोता खाहि॥
जा गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रांति न जिव का जाय।
सो गुरु झूठा जानिए, त्यागत देर न लाय॥
जा गुरु को तो गम नहीं, पाहन दिया बताय।
शिष शोधे बिन सेइया, पार न पहुँचा जाय॥
कबीर बेड़ा सार गा, उपर लादा सार।
पापी का पापी गुरु, यों बूड़ा संसार॥
जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय।
कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय॥
गुरुवा तो सस्ता भया, कौड़ी अर्थ पचास।
अपने तन की सुधि नहीं, शिष्य करन की आस॥
गुरुवा तो घर-घर फिरे दीक्षा हमारी लेह।
कै बूढ़ो कै ऊबरो, टका परदनी देह॥
बंधे को बंधा मिला, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेय छुड़ाय॥
गुरु लोभी शिष लालची, दोनों खेले दांव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नांव॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला खरा निरंध।
अंधे को अंधा मिला, पड़ा काल के फंद॥
जानीता बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावे कौन॥
आगे अंधा कूप में, दूजे लिया बुलाय।
दोनों बूड़े बापुरे, निकसे कौन उपाय॥

अर्थात केवल जाति, रंग, रूप, वेशभूषा देखकर ही जिसने गुरु किया है, उसने देह को ही गुरु बनाया है, वास्तविक सद्गुरु को वह परख नहीं पाया। ऐसे लोग बारंबार भवसागर में डूबेंगे। जिस गुरु से अज्ञान दूर न हो और हृदय का संदेह न मिटे, ऐसे गुरु को झूठा समझो और उसे छोड़ने में विलंब न करो। जिस गुरु को ज्ञान-मार्ग का पता नहीं है, उसने शिष्य को केवल पत्थर पूजना बता दिया और बिना परख किए शिष्य भी उसी गुरु के अनुसार वही काम करने लगा और इसलिए वह अंततः पार न पाया। उसका कल्याण नहीं हो सका।

संत कबीर कहते हैं कि लोहा की नाव पर लोहा का भार लदा' यानी पापी मनुष्य को पापी गुरु मिल गया, इस प्रकार दोनों डूब गए। जिसका गुरु स्वयं बंधन में पड़ा है, संसार की आसक्ति में डूबा है, फिर उस गुरु से शिष्य का कल्याण कैसे होगा? कीचड़ का दाग क्या कीचड़ से छूट सकता है? पैसे के लिए सस्ते हुए तो पचासों गुरु घूमते-फिरते हैं। उन्हें तो स्वयं अपने तन की खबर नहीं है कि हमारा क्या आचरण है, पर फिर भी वे शिष्य बनाने को आतुर हैं।

ऐसे गुरु घर-घर, द्वार-द्वार पुकारते फिरते हैं कि हमसे मंत्र ले लो, चाहे तुम बूड़ो या उबरो, हमें तो बस, पैसा-धोती से काम है। ऐसे गुरु का मिलना तो वैसा ही है मानो एक बँधे को (बंधन में पड़े व्यक्ति को) दूसरा बँधा हुआ मिल गया तो फिर वह शिष्य स्वयं कैसे छूट सकता है? अतः जो निर्बंध है (जो स्वयं बंधनमुक्त है), उसकी सेवा करो, वह तुम्हें पल भर में छुड़ा लेगा।

यदि गुरु और शिष्य दोनों लालची हैं, दोनों ही एकदूसरे को ठगने की फिराक में हैं तो दोनों एकदूसरे के साथ अपने-अपने दाँव खेलेंगे और वे दोनों बेचारे अज्ञानरूपी पत्थर की नाव पर बैठकर डूब मरेंगे। जिसका गुरु ही अविवेकी है, उसका शिष्य तो महा अविवेकी होगा ही। अविवेकी शिष्य को जब अविवेकी गुरु मिल गया, तब तो दोनों ही कल्पना के हाथ में पड़कर बरबाद होंगे। शिष्य ने भी विवेकी गुरु से जान-बूझकर ज्ञान नहीं लिया और परमार्थ-पथ पर नहीं चला। तब तो फिर अंधे को अंधा मिल ही गया, फिर मार्ग बताए कौन? अविवेकी गुरु तो पहले ही भ्रम के कुएँ में गिरा पड़ा था, फिर उसने शिष्य को भी बुलाकर उसी कुएँ में गिरा दिया। फिर तो दोनों बेचारे उसी में डूब गए और वे किस उपाय से बाहर निकलें।

दरअसल जिनके लिए अध्यात्म, आत्मपरिष्कार की साधना के बजाय महज एक कौतुक है, वे आत्मपरिष्कार किए बिना ही आध्यात्मिक आनंद पाना चाहते हैं, जो कि संभव नहीं है। ऐसे लोग ही किसी शॉर्टकट की खोज में घूमते-फिरते हैं और लालची, अज्ञानी व तथाकथित गुरुओं के जाल में फँसते हैं और अपनी हानि करते हैं। यदि हम सचमुच आध्यात्मिक प्रगति चाहते हैं तो हमें आत्मपरिष्कार की प्रक्रिया से गुजरने के लिए तैयार होना ही होगा और आत्मपरिष्कार की साधना हेतु किसी सद्गुरु की खोज करनी ही होगी।

संत कबीर ने कहा है—

सद्गुरु ऐसा कीजिए, लोभ, मोह, भ्रम नाहिं।
दरिया सो न्यारा रहे, दीसे दरिया माहिं॥
गुरु मिला तब जानिए, मिटै मोह तन ताप।
हरष शोक व्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप॥

अर्थात सद्गुरु ऐसा करो, जिसके हृदय में लोभ, मोह एवं भ्रम न हो और जो संसार में विचरता दिखते हुए भी संसार सागर से पृथक रहे, संसार की आसक्ति से परे रहे। अतः शास्त्रों और संतों के साथ ही निर्देश है कि गुरु रूप में हमें किन्हीं ऐसे बुद्धपुरुष को ही वरण करना चाहिए, जिन्हें बुद्धत्व की परम उपलब्धि हुई हो अर्थात जिन्हें योग, तप व आध्यात्मिक साधनाओं के द्वारा आत्मसाक्षात्कार की परम उपलब्धि हुई हो।

गुरु को गायत्री रूप कहा गया है। गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ व आद्यशक्ति गायत्री का साक्षात्कार करने वाले इस युग के महानतम ऋषि परमपूज्य गुरुदेव को अपने गुरु रूप में वरण कर हम निस्संदेह एक महानतम ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ ऋषि के शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

उन्होंने युगऋषि के रूप में गायत्री और यज्ञ जैसी सनातन परंपरा को मजहब, पंथ, संप्रदाय, जाति आदि संकीर्ण बंधनों से मुक्त कर सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की मंगल भावना के साथ सार्वभौम कर दिया।

अध्यात्म को जादूगरी और चमत्कार मानने वाली मूढ़मान्यताओं का पुरजोर खंडन कर उन्होंने अध्यात्म को आत्मपरिष्कार की साधना के रूप में स्थापित और प्रचारित किया। टोने-टोटके, भस्म, भभूति और ताबीज धारण कर लेने मात्र से सब कुछ हासिल हो जाने की मूढ़मान्यताओं का खंडन कर उन्होंने जनमानस को आत्मपरिष्कार की साधना के लिए प्रेरित किया और अध्यात्म के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत कर उनके लिए मुक्ति और आनंद का मार्ग प्रशस्त किया।

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी गुरु आज सशरीर या भौतिक रूप से भले ही न हों, पर उनकी आध्यात्मिक चेतना आज भी प्रबलतम और उच्चतम रूप में सक्रिय है और हमें संरक्षण, मार्गदर्शन और अंत:प्रेरणा देने में समर्थ है।

उनके द्वारा रचित सत्साहित्य ब्रह्मज्ञान के अमृतरस से भरा-पूरा है, जिसका पान कर हम आत्मिक, आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ सकते हैं। उनके द्वारा बताए गए आध्यात्मिक अनुशासन; यथा जप, तप, ध्यान, यज्ञ, स्वाध्याय, सेवा, संयम का पालन करते हुए हम अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कभी भी कर सकते हैं।

यदि हम वास्तव में अध्यात्मपिपासु हैं और अपने लोक-परलोक को सँवारना चाहते हैं तो परमपूज्य गुरुदेव को अपने गुरु रूप में वरण कर सकते हैं। हाँ! हम अपनी रुचि, अभिरुचि, प्रकृति के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण, भगवान शंकर, भगवान सूर्य, आद्यशक्ति गायत्री और श्रीहनुमान जी आदि में से भी किसी एक को अपने गुरु और आराध्य, दोनों के रूप में वरण कर सकते हैं। क्यों? क्योंकि भगवान गुरुओं के भी गुरु हैं। वे आदिगुरु हैं।

महर्षि पतंजलि योगसूत्र 1.26 में कहते हैं- **'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** अर्थात वह ईश्वर पूर्वजों का भी गुरु है; क्योंकि वह स्वयं अनादि है और काल की सीमा से भी परे है। वहीं महर्षि वेदव्यास, योगभाष्य 2.32 में कहते हैं— **'ईश्वर प्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्व कर्मापराम्'** अर्थात उस ईश्वररूपी गुरु में समस्त कर्मों का अर्पण ईश्वर प्रणिधान है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस में भगवान शंकर की वंदना करते हुए लिखा है— **'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्'** अर्थात ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरु की मैं वंदना करता हूँ। वहीं भगवान श्रीकृष्ण की वंदना भी जगद्गुरु के रूप में की गई है—**'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'** अर्थात जगद्गुरु के रूप में मैं भगवान श्रीकृष्ण की वंदना करता हूँ। वहीं सूर्यदेव तो प्रत्यक्ष प्रकाशपुंज बन पूरे जगत् को आलोकित करते ही हैं।

गुरु का अर्थ है—अंधकार दूर करने वाला और प्रकाश फैलाने वाला। भगवान सूर्य ने ही गुरु के रूप में हनुमान जी को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी। गायत्री मंत्र के देवता भी सविता (सूर्य) हैं। अस्तु हम सविता (सूर्य) को गुरु के रूप में वरण कर उनका अपने हृदय में ध्यान करते हुए गायत्री मंत्र का जप कर सकते हैं।

वहीं श्री हनुमान जी के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने हनुमान चालीसा में लिखा है—

जै जै जै हनुमान गोसाईं।
कृपा करहु गुरुदेव की नाईं॥

प्राप्ति में जो आनंद है, उसकी अपेक्षा प्रयत्न का आनंद श्रेष्ठ है।

अर्थात हे स्वामी हनुमान जी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप मुझ पर कृपालु गुरुदेव की तरह कृपा कीजिए।

अस्तु भगवान के जिस रूप से, छवि से हमें अगाध प्रीति है, प्रेम है, लगाव है और जिसमें हमारी पूर्ण श्रद्धा है, विश्वास है—उसी का हम अपने हृदय में नित्य ध्यान कर सकते हैं और उस आराध्य से संबंधित मंत्रों का जाप कर सकते हैं। अपने आराध्य और गुरु, दोनों के रूप में हम भगवान की पूजा-उपासना कर सकते हैं।

साथ ही शास्त्रों; यथा रामायण, गीता, वेद, उपनिषद्, पुराण आदि का स्वाध्याय कर हम उचित आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ पर ध्यान रहे कि हमारी साधना में, उपासना में नियमितता और संयम अवश्य होना चाहिए; तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। ❑

एकत्व

विविधता से भरे इस संसार में एक चेतन सत्ता विद्यमान है, जिसकी तरंगें ही स्थूल से लेकर सूक्ष्मजगत् का निर्माण करती दिखाई पड़ती हैं। वह परमशक्ति, परमेश्वर, परमात्मा ही 'एकत्व' का प्रतीक है, जिसे विभिन्न पथों में, विभिन्न नामों से पुकारा गया है। उसी एक तत्त्व से यह सारा संसार जन्मता है और फिर उसी में विलीन भी हो जाता है।

जाने-अनजाने हम सभी उसी की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। जिस तरह अपने उद्गम से निकलने के बाद नदी, सागर से मिलने के बाद ही पूर्ण विराम पाती है—वैसे ही, हम सभी अपना गंतव्य न जानते हुए भी निरंतर उसी परम चेतना की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं।

यही कारण है कि समस्त आध्यात्मिक अनुसंधान एकत्व की प्राप्ति, एकत्व की अनुभूति को ही जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं।

यह जानकर ही श्रुति कहती है कि—

यथा सौम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्तो।
एवं हवै तत् सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते॥

अर्थात हे सौम्य! जिस तरह से पक्षीगण अपने वास वृक्ष में आकर ही स्थिर होते हैं, उसी प्रकार यह सारा संसार परमात्मा में ही प्रतिष्ठित होता है।

उसी एक परमात्मा की चेतना सभी के भीतर समायी हुई एवं क्रीड़ा-कल्लोल करती हुई दिखाई पड़ती है। दार्शनिक दृष्टि से कहें तो भासित होने वाली संसार की अनेकता-अखंडता में एकता-अखंडता का दर्शन करना ही तत्त्वज्ञान है। इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है कि—

एकधैवानुद्रष्टव्यमेतहप्रमेयं ध्रुवम्॥

अर्थात सृष्टि की विचित्रता व विभिन्नता में भी अपरिमेय ध्रुव की एकता देखनी होगी। कहने का अर्थ स्पष्ट है कि सर्वत्र एक ही परमात्मा विद्यमान है। हम सभी उसी से गुँथे हुए हैं।

यदि उस 'एकत्व' की अनुभूति मनुष्य को हो जाए तो सभी तरह के भेद-विग्रह समाप्त हो जाते हैं। इसलिए प्रयत्न यही करें कि अपने हृदय की भावनाओं, चिंतन एवं चेष्टाओं को उस 'एकत्व' को समर्पित कर दें। आत्मकल्याण एवं विश्वकल्याण का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इसी पथ पर चलने की आवश्यकता सभी को है। ❑

एक दुर्बल व्यक्ति संत सुकरात के पास गुरुदीक्षा लेने पहुँचा। सुकरात उसे एक बिना पेंदी का लोटा दिखाते हुए बोले—"दीक्षा लेने से पहले तुम इस लोटे में पानी भर लाओ।" वह व्यक्ति आश्चर्यचकित होकर बोला—"आप भी क्यों मजाक करते हैं। भला इसमें पानी कैसे ठहरेगा?" सुकरात बोले—"तो वत्स! बिना शरीर को संयमित और दृढ़ किए तुम ब्रह्मतेज कैसे सँभालोगे? पहले शरीर मजबूत करो, फिर मन को साधना।" सुकरात का कहा उस व्यक्ति की समझ में आ गया।

समाधि में होती है ब्रह्मानंद की अनुभूति

समाधि योग-साधना की चरमावस्था है। समाधि साधना का सार है, सर्वस्व है, उपसंहार है, निष्कर्ष है, फल है, प्रतिफल है, परिणाम है। 'समाधि' दो शब्दों से मिलकर बना है—'सम' और 'धी'। 'सम' यानी सम्यक, 'सम' यानी एक जैसा होना और 'धी' यानी बुद्धि, 'धी' यानी प्रज्ञा।

इस प्रकार 'समाधि' का अर्थ हुआ बुद्धि का एक समान स्तर पर होना, समत्व की स्थिति में होना, समतावस्था में होना, समदर्शी होना, समदृष्टि होना, स्थिरबुद्धि होना, स्थितप्रज्ञ होना।

'समाधि' शब्द का अर्थ है सम-अधि अर्थात जब चित्त पूरी तरह से आत्मा में समाहित हो जाता है, तब यह अवस्था समाधि कहलाती है। अत: योग की दृष्टि से 'समाधि' शब्द का अर्थ है—सम्यक रूप से भगवान के साथ युक्त हो जाना। जीवात्मा का परमात्मा के साथ, जीव का ब्रह्म के साथ युक्त हो जाना, एकाकार हो जाना ही समाधि है और यह समाधि ही योग है; क्योंकि 'योग' शब्द की उत्पत्ति 'युज' धातु से हुई है और 'युज' धातु का अर्थ है—समाधि। महर्षि वेदव्यास ने भी कहा है—'**योग: समाधि:**' अर्थात योग ही समाधि है।

यदि कोई साधक समाधि की अवस्था को उपलब्ध है तो इसका अर्थ यह हुआ कि साधक 'सम' अवस्था में है, 'समत्व' की अवस्था में है, समतावस्था में है, साधक स्थितप्रज्ञ है, साधक स्थिरबुद्धि है। वह सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वंद्वों से मुक्त है, परे है। साधक समाधि की अवस्था को उपलब्ध है तो इसका अर्थ यह हुआ कि साधक सम्यक रूप से भगवान के साथ युक्त है।

उस स्थिति में साधक का कोई पृथक अस्तित्व नहीं रहता। साधक का ब्रह्म में अवस्थान हो जाता है। भगवान सत्-चित्-आनंद के रूप में साधक के अंतस् में प्रस्फुटित होने लगते हैं, प्रकट होने लगते हैं। भगवान की सत्ता, चैतन्य और आनंद अपने आप साधक की वाणी, भाव और कार्य के द्वारा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होने लगते हैं, प्रगट होने लगते हैं।

अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप ब्रह्म की अनुभूति पाकर साधक ब्रह्मानंद, परमानंद, नित्यानंद में स्थित हो जाता है। यह अवस्था ही समाधि है और यह समाधि ही योग है। समाधि की अवस्था में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति आदि चित्तवृत्तियाँ मिट जाती हैं।

समाधि की अवस्था को पा लेने पर साधक, जीवमात्र को जीवन-मरण और संसारचक्र में घुमाने वाले महादु:खदायक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि पंचक्लेशों से मुक्त हो जाता है।

कर्म-संस्कारों से शून्य होकर साधक का चित्त निर्मल हो जाता है। साधक का शुद्ध, निर्मल चित्त आत्मा में समाहित हो जाता है और तब जीवात्मा अपने वास्तविक यथार्थस्वरूप को पहचान लेती है और उसी में अवस्थित हो जाती है। जीवात्मा को प्रकृति, देह, मन, बुद्धि और इंद्रियों से भिन्न होने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का प्राकट्य होता है। आत्मा के ऊपर से अविद्या, अज्ञान का आवरण हट जाता है और आत्मा का परमात्मा में अवस्थान हो जाता है।

जैसे बादलों के आवरण से मुक्त होते ही सूर्य का तेज प्रकट हो जाता है, वैसे ही अविद्या, अज्ञान का आवरण हटते ही, मिटते ही आत्मा अपने यथार्थस्वरूप को पहचानकर परमात्मा में स्थित हो जाती है। परमात्मा को प्रकृति और पुरुष के पृथक-पृथक होने का ज्ञान हो जाता है।

साधक सत्, रज, तम आदि त्रिगुणात्मक प्रकृति के प्रभाव से परे हो जाता है। वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि तन्मात्राओं के प्रभाव से भी परे हो जाता है। वह सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि द्वंद्वों से परे हो जाता है; क्योंकि इस अवस्था में योगी अपने निजस्वरूप सत्-चित्-आनंद में स्थित होता है।

इसलिए तो योगी के जीवन में, योगी के अंतरतम में आनंद, परमानंद, ब्रह्मानंद हर पल बड़े वेग से बहता जाता है। योगी बाह्यदृष्टि से संसार में दीखता है, पर वास्तव में हर पल ब्राह्मीभावदशा में होने के कारण संसार उसमें होता नहीं, संसार उसमें रहता नहीं, संसार उसमें बसता नहीं। वह तो ब्रह्मलोक का वासी होता है। उसकी देह संसार में होती है, पर देह में स्थित उसकी आत्मा हर पल ब्रह्म में अवस्थित होती है, हर पल ब्रह्म में रमण करती है। अस्तु संसार में होकर भी वह संसारी नहीं होता। इसलिए तो उसे हर पल आनंद-ही-आनंद होता है।

ध्यान करते-करते ध्याता को जब केवल ध्येयस्वरूप का ही भान होता है और उसे अपने स्वरूप के भान का अभाव-सा रहता है, तब वह अवस्था ही समाधि है। ध्यान करते-करते जब ध्याता का चित्त ध्येयाकार को प्राप्त हो जाता है और ध्येय से भिन्न अपने आप का ज्ञान उसे नहीं रह जाता है तो उस स्थिति का नाम ही समाधि है। ध्यान और समाधि में अंतर यही है कि ध्यान की अवस्था में ध्याता (ध्यान करने वाला), ध्येय (जिसका ध्यान किया जा रहा है) तथा ध्यान तीनों बने रहते हैं, पर समाधि में ध्याता और ध्यान दोनों का स्वरूप शून्य हो जाता है और केवल ध्येय वस्तु ही रह जाती है।

योगऋषि पतंजलि ने योगसूत्र (3.1-2) में स्पष्ट किया है कि जहाँ चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्तवृत्ति का एकतार चलना ध्यान है और जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निजस्वरूप शून्य-सा हो जाता है, तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

ऋषिवर का आशय यह है कि ध्यान करते-करते जब चित्त ध्येय वस्तु में ही लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है और ध्येय मात्र ही रह जाता है तब उसे ही समाधि कहते हैं। ध्यान करते-करते ध्याता को जब अपने स्वरूप के ज्ञान का भी अभाव हो जाता है, तब वह अवस्था ही समाधि है।

जब एकतार दौड़ती हुई सरिता सागर में जा मिलती है तब क्या उसका अपना स्वरूप शेष रह पाता है। नहीं! बिलकुल नहीं। सागर में घुलने-मिलने से पूर्व सरिता का अपना अस्तित्व अवश्य था, पर सागर में घुलते ही; सागर में मिलते ही उसका अपना स्वरूप रहा नहीं। क्यों? क्योंकि सागर से घुलते ही, सागर से मिलते ही सरिता भी सागर हो गई। सरिता भी सागर में समाकर सागर ही हो जाती है।

ब्रह्म का ध्यान करते-करते ध्याता का चित्त उसी ध्येय वस्तु अर्थात ब्रह्म में लीन हो जाता है। ध्याता और ध्येय, दोनों एक हो जाते हैं, अभेद हो जाते हैं, अभिन्न हो जाते हैं, अद्वैत हो जाते हैं। जीवात्मा परमात्मा से घुलकर, मिलकर परमात्मारूप हो जाती है।

इस स्थिति को प्रकाशित करते हुए संत कबीर ने कहा है—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

संत कबीर इस दोहे में अपनी ईश्वरीय अनुभूति का जिक्र करते हैं। वे कहते हैं कि जबसे मैंने ईश्वर

की अनुभूति पाई है, अपने लाल (ईश्वर) की लाली (ईश्वरत्व) की अनुभूति पाई है, तब से मैं जिधर भी देखता हूँ, उधर मेरे लाल ही नजर आते हैं। एक छोटे-से कण में भी, एक चींटी में भी, हर अणु में, परमाणु में, हर जीव में मुझे मेरे लाल (ईश्वर) ही दीख पड़ते हैं। सर्वत्र उनका ही वास है। स्वयं मुझमें भी मेरे लाल (ईश्वर) का ही वास नजर आता है।

यह स्पष्ट है कि समाधि में प्राप्त ईश्वरीय अनुभूति के फलस्वरूप साधक की जीवन-दृष्टि बिलकुल बदल-सी जाती है। यह सारा संसार, विश्व-ब्रह्मांड ही उसे ईश्वर से ओत-प्रोत जान पड़ता है। फलस्वरूप वह हर कर्म को ही ईश्वर का कर्म मानकर पूजा के भाव से करता है। वह स्वयं को अकर्त्ता और ईश्वर को ही कर्त्ता के रूप में देखने लगता है और स्वयं को तो वह ईश्वर के हाथों का एक उपकरण, एक यंत्र मात्र मानता है। उसका हर कर्म ही अकर्म होने लगता है, निष्काम होने लगता है। वह सब प्रकार से निर्द्वंद्व, निर्भय और निर्बंध हो जाता है।

समाधि की स्थिति में ब्रह्म के साथ एकाकार हुआ, ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हुआ साधक, योगी जिस ब्रह्म की अनुभूति अपने अंत:करण में करता है, वह उस ब्रह्म को बाहर भी विभिन्न रूपों में देखता है। वह ब्रह्म को ब्रह्मांड के कण-कण में अभिव्यक्त होते हुए देखता है। साधक के अंदर और बाहर दोनों एक ही जैसी स्थिति हो जाती है; क्योंकि साधक ब्रह्म के साथ एकाकार हो चुका है। साधक की इसी भावदशा को संत कबीर ने प्रस्तुत दोहे में कुछ यों प्रकाशित किया है—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल, जलहि समाना, यह तथ्य कहयो गयानी॥

अर्थात जब पानी भरने जाएँ तो घड़ा जल में रहता है और भरने पर जल घड़े के अंदर आ जाता है। इस तरह देखें तो बाहर-भीतर पानी ही रहता है। बाहर-भीतर पानी की ही सत्ता है। जब घड़ा फूट जाए तो उसका जल, जल में ही मिल जाता है, फिर घड़े का जल और समुद्र के जल में कोई अलगाव नहीं होता। आत्मा-परमात्मा, दोनों एक हो जाते हैं। आत्मा और परमात्मा दोनों दो नहीं एक हो जाते हैं। आत्मा, परमात्मा में और परमात्मा, आत्मा में विराजमान होता है। अंतत: परमात्मा की ही सत्ता है। जब देह विलीन होती है तो आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण परमात्मा में ही समा जाती है, एकाकार हो जाती है।

समाधि वह अवस्था है, जिसमें जीवात्मा ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाती है। उसकी अलग सत्ता, अलग अस्तित्व नहीं रह जाता, पर समाधि की यह अभौतिक, अलौकिक, आध्यात्मिक व असाधारण घटना साधक के अंतरतम में रातोंरात घटित नहीं हो जाती। उसे इसके लिए धैर्यपूर्वक, संयमपूर्वक, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ लक्ष्य प्राप्त होने तक, नियमित रूप से, अविराम ब्रह्म का चिंतन, ब्रह्म का ध्यान करते रहना होता है।

तब कहीं जाकर साधक का चित्त वृत्तियों से मुक्त हो पाता है। चित्त मलों से, विकारों से, संस्कारों से, वासनाओं से मुक्त हो पाता है अर्थात चित्तवृत्तियों का पूर्णत: निरोध हो पाता है। चित्त पूर्णत: निर्मल हो पाता है और वह निर्मल चित्त ब्रह्म में लीन, विलीन हो पाता है और तब आत्मा का सदैव के लिए परमात्मा में अवस्थान हो जाता है। जीव को ब्रह्म के साथ एकता की अनुभूति होती है। उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। तभी तो भगवान राम ने कहा है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

अर्थात जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है। मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते। निर्मल चित्त की अवस्था में ही साधक के

अंतरतम में समाधि घटित होती है और उसके अंतरतम में ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मानंद प्रस्फुटित होता है।

योग चाहे वह राजयोग हो, हठयोग हो, मंत्रयोग हो, ज्ञानयोग हो, कर्मयोग हो या भक्तियोग हो—इन सभी प्रकार के योग का संबंध चित्तवृत्ति के निरोध से ही है। हम किसी भी प्रकार के योग के अभ्यास से चित्त की वृत्तियों का निरोध कर सकते हैं। साधारण अवस्था में चित्तवृत्ति प्रतिपल परिवर्तित होती रहती है, किंतु समाधि-अवस्था में चित्तवृत्ति एकाकार हो जाती है।

चित्तवृत्तियों के बदलते रहने का मुख्य कारण यह है कि यह मन, इंद्रियों के द्वारा बहिर्मुख होकर, बाह्य विषयों से आसक्त रहता है। इसलिए मन को विवेक और वैराग्य के द्वारा, यम-नियम, प्राणायाम, ध्यान, ज्ञान, कर्म, भक्ति के द्वारा बाह्य विषयों से हटाने का अभ्यास करते रहना चाहिए और साथ ही शास्त्रों के श्रवण और मनन की आवश्यकता भी अपरिहार्य है।

जितना ही शास्त्रों का स्वाध्याय, श्रवण व मनन अधिक होगा, उतना ही शीघ्र 'वस्तु' के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होगा और फलतः उतनी ही दृढ़ता से चित्त की वृत्तियों का निरोध होगा और समाधि की वह आनंददायी अवस्था हमें प्राप्त हो सकेगी।

समाधि के दो चरण या स्तर कहे गए हैं—संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात। संप्रज्ञात समाधि उस समाधि को कहते हैं जो वितर्क, विचार, आनंद और अस्मिता के भाव से संयुक्त होती है। चूँकि संप्रज्ञात समाधि में ध्येय विषय की निरंतर भिन्नता रहती है, इसलिए इस भिन्नता के आधार पर संप्रज्ञात समाधि के चार प्रकार कहे गए हैं।

प्रथम है सवितर्क समाधि। यह समाधि का वह रूप है जिसमें स्थूल विषय पर ध्यान लगाया जाता है। उदाहरणस्वरूप मूर्ति पर ध्यान जमाने को सवितर्क समाधि कहा जा सकता है। दूसरी है सविचार समाधि। यह समाधि का वह रूप है, जिसमें सूक्ष्म विषय पर ध्यान लगाया जाता है। इस समाधि में कभी-कभी तन्मात्रा भी ध्यान का विषय होती है।

सानंद समाधि, संप्रज्ञात समाधि का तीसरा प्रकार है। इस समाधि में ध्यान का विषय इंद्रियाँ रहती हैं। हमारी इंद्रियाँ ग्यारह हैं—पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और मन। इन्हीं पर ध्यान लगाया जाता है। इंद्रियों की अनुभूति आनंददायक होने के कारण इस समाधि को सानंद समाधि कहा जाता है। सस्मित समाधि, संप्रज्ञात समाधि का चौथा प्रकार है। समाधि की इस अवस्था में ध्यान का विषय अहंकार है। 'अहंकार' को 'अस्मिता' कहा जाता है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार यह संप्रज्ञात समाधि दरअसल वैराग्य से धुले हुए निर्मल चित्त की परिणति है। संप्रज्ञात समाधि में सम्यक तर्क, सम्यक विचारणा, आनंद की अवस्था और अस्मिता का अनुभव समाया हुआ होता है। इस समाधि में चित्त शुद्ध तो होता है, पर चित्त में कर्मों के संस्कारों के बीज अभी भी शेष रहते हैं, कर्म-संस्कारों के बीज अभी भी बने रहते हैं। इसलिए इसे सबीज समाधि भी कहते हैं। इसलिए इस सबीज को निर्बीज करने के लिए समाधि के अगले चरण में प्रवेश करना होता है, जिसे असंप्रज्ञात या निर्बीज समाधि कहते हैं।

असंप्रज्ञात समाधि में सारी मानसिक क्रिया की समाप्ति हो जाती है और मन केवल अप्रकट संस्कारों को धारण किए रहता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव इसे प्रकाशित करते हुए कहते हैं कि समाधि का पहला चरण अर्थात संप्रज्ञात समाधि—शुचिता का है तो समाधि का दूसरा चरण अर्थात असंप्रज्ञात समाधि—विलीनता का है। समाधि के प्रथम चरण अर्थात संप्रज्ञात समाधि में साधक के मन की सारी अशुद्धि तिरोहित हो जाती है। सभी विकार व

बुराइयाँ मिट जाते हैं, पर चित्त में कर्म संस्कारों के बीज बने रहते हैं। समाधि के दूसरे चरण अर्थात असंप्रज्ञात समाधि में कर्म संस्कारों के बीज भी नष्ट हो जाते हैं और चित्तवृत्तियों का पूर्णत: निरोध हो जाता है।

असंप्रज्ञात समाधि की अवस्था में बुराई भी गिर जाती है और अच्छाई भी। यहाँ तक कि अच्छाई या शुद्ध अवस्था को धारण करने वाला मन भी समाप्त हो जाता है। अस्तु यह अ-मन की अवस्था है। मन की यह समाप्ति प्रकारांतर से देहबोध की समाप्ति है। इस अवस्था में देह के पृथक होने का एहसास होता है। इस अवस्था में आत्मा अपने यथार्थस्वरूप को पहचान लेती है और आत्मा का संपर्क विभिन्न विषयों से छूट जाता है। यही मोक्ष की अवस्था है।

आचार्य शंकर विवेक चूड़ामणि (354-370) में कहते हैं कि अज्ञानरूपी हृदय की ग्रंथि का सर्वथा नाश तो तभी होता है, जब निर्विकल्प समाधि (असंप्रज्ञात समाधि) के द्वारा अद्वैत आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया जाता है। एकाग्रचित्त से निरंतर सत्यस्वरूप ब्रह्म में स्थित रहने से मनुष्य ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। परमात्मतत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है, उसे स्थूलदृष्टि से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए अतिशुद्ध बुद्धि वाले सत्पुरुषों को उसे समाधि द्वारा अति सूक्ष्मवृत्ति से जानना चाहिए।

जिस प्रकार अग्नि में शुद्ध किया हुआ सोना संपूर्ण मल को त्यागकर अपने स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार मन ध्यान के द्वारा सत्, रज, तम रूपी मल को त्यागकर आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। जिस समय रात-दिन के निरंतर अभ्यास से परिपक्व होकर मन ब्रह्म में लीन हो जाता है, उस समय अद्वितीय ब्रह्मानंदरस का अनुभव कराने वाली वह निर्विकल्प समाधि (असंप्रज्ञात समाधि) स्वयं ही सिद्ध हो जाती है।

इस निर्विकल्प समाधि (असंप्रज्ञात समाधि) से समस्त वासना-ग्रंथियों का नाश हो जाता है तथा वासनाओं के नाश से संपूर्ण कर्मों का भी नाश हो जाता है और फिर बाहर-भीतर सर्वत्र बिना प्रयत्न के ही निरंतर आत्मस्वरूप की स्फूर्ति होने लगती है।

निर्विकल्प समाधि के द्वारा निश्चय ही ब्रह्मतत्त्व का स्पष्ट ज्ञान होता है और किसी भी प्रकार से वैसा बोध नहीं हो सकता, क्योंकि अन्य अवस्थाओं में चित्तवृत्ति के चंचल रहने से उसमें अन्यान्य प्रतीतियों का भी मेल रहता है। इसलिए सदा इंद्रिय संयम के साथ शांत मन से ब्रह्म में चित्त स्थिर करके और सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ अपना ऐक्य देखते हुए अनादि अविद्या से उत्पन्न अज्ञानांधकार का ध्वंस करना चाहिए। इसी से योगी को ब्रह्मानंदरस का अविचल अनुभव होता है। उसके चित्त में सच्चिदानंदरसानुभव की बाढ़ आने लगती है।

गीता के दूसरे अध्याय के 54वें श्लोक में अर्जुन योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं—"हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि अर्थात समाधिस्थ पुरुष के क्या लक्षण हैं? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?"

तब श्रीभगवान बोले—"हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा-से-आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। दु:खों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है। कछुआ सब ओर से अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इंद्रियों के विषयों से इंद्रियों को सब

प्रकार से घटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिए। इंद्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती, पर इस स्थित प्रज्ञापुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।''

श्रीभगवान आगे बोले—''हे अर्जुन! आसक्ति नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इंद्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं। इसलिए साधक को चाहिए कि वह उन संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे; क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो पाती है। विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।''

भगवान कृष्ण ने आगे कहा—''क्रोध से अत्यंत मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है। मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है। स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है, परंतु अपने अधीन किए हुए अंत:करण वाला साधक अपने वश में की हुई, राग-द्वेष से रहित इंद्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ भी अंत:करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। अंत:करण की प्रसन्नता होने पर इसके संपूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में भली भाँति स्थिर हो जाती है।

''हे महाबाहो! संपूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानंद की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि के समान है। जैसे विभिन्न नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में, समुद्र को विचलित किए बिना ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते हैं और वही पुरुष परम शांति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।''

भगवान कृष्ण आगे बोले—''जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है अर्थात वह शांति को प्राप्त है। हे अर्जुन! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की, साधक की स्थिति है। इसलिए ब्रह्म को प्राप्त, समाधि को प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अंतकाल में भी इसी ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानंद को प्राप्त हो जाता है।

''वास्तव में समाधि को उपलब्ध हुए साधक के अंत:करण में ऐसा परम आनंद है, परम पुलकन है, परम अनुभूति है, जो वर्णन से परे है। वह साधक उसी आनंददायी अनुभूति में जीता है, सोता है, खाता है, खेलता है, हँसता है, रोता है, उठता है, बैठता है, दौड़ता है, चलता है। वह चाहे जहाँ भी होता है, जिस किसी कार्य को कर रहा होता है, वह उसी अनुभूति में होता है।

''बाह्यदृष्टि से तो वह सामान्य, साधारण ही दीखता है, पर अपने अंत:करण में वह वही ब्राह्मी आनंद, परम पुलकन, परम शांति, परम सुख की अनुभूति कर रहा होता है, पा रहा होता है, वह आँखें खोलकर बैठा हो या मूँदकर, वह दौड़ रहा हो या फिर बैठा हो, वह चल रहा हो, खेल रहा हो या नाच रहा हो, वह सुखासन में या पद्मासन में हो या नहीं हो, वह दौड़ता और चलता हुआ भी, खाता और खेलता हुआ भी उसी ब्राह्मी भावदशा में होता है, आनंद में होता है, पुलकन में होता है।''

समाधि को प्राप्त साधक की उसी ब्राह्मी भावदशा को प्रस्तुत दोहे में प्रकाशित करते हुए संत कबीर ने कहा है—

संतो सहज समाधि-भली,
साईं ते मिलन भयो जा दिन से सुरत न अंत चली
आँख न मूँदूँ, कान न रूधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ सुंदर रूप निहारूँ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन जो कुछ करूँ सो पूजा॥
गिरह उध्यान एक सम देखूँ भाव मिटाऊँ दूजा॥
जहँ-जहँ जाऊँ सोई परिकरमा जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत् पूजूँ और न देवा॥
शब्द निरंतर मनुआ राता मलिन बचन का त्यागी।
उठत-बैठत कबहुँ न बिसरै ऐसी तारी लागी॥
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी सो परगट कर गाई।
सुख-दुःख के इस परे परम सुख तेहि मे रहा समायी॥

अर्थात कबीरदास जी कहते हैं कि संतों, सहज समाधि ही भली है। जबसे साईं (ब्रह्म) से मिलन हो गया है, तबसे मैंने किसी और से लौ नहीं लगाई है। मैं न आँख बँद करता हूँ न कान, और न शरीर को कष्ट पहुँचाता हूँ। मैं तो खुली आँखों से भी हँस-हँसकर उसी साईं (ब्रह्म) का सुंदर रूप देखता हूँ। मैं जो कुछ बोलता हूँ, वही साईं का नाम है और जो कुछ सुनता हूँ वही साईं का सुमिरन है। मैं जो कुछ करता हूँ वही पूजा है। मेरे लिए घर और उद्यान सब समान ही हैं। मेरे लिए उनमें कोई अंतर है नहीं। मैं जहाँ भी जाऊँ, वही मेरे लिए परिक्रमा है और जो कुछ करूँ, वही साईं की सेवा है। जब मैं सोता हूँ, तब वही मेरा दंडवत् है। मैं साईं के अलावा किसी और की पूजा नहीं करता। मेरा मन तो निरंतर उसी साईं (ब्रह्म) के गीत गाता है। उठते-बैठते मुझे उसकी (ब्रह्म की) याद ताजा रहती है और इस राग का क्रम कभी टूटने नहीं पाता। कबीर कहते हैं कि मेरे हृदय में जो उन्माद था, उसे मैंने प्रगट कर दिया है। मैं परम सुख की उस अवस्था में पहुँच गया हूँ, जो सुख और दुःख दोनों से परे है।

अस्तु समाधि सुख-दुःख से परे परम सुख की अवस्था है, परमानंद की अवस्था है। नियत समय, नियत स्थान, नियमित साधना व सात्त्विक आहार-विहार व संयम का पालन करते हुए कोई भी साधक इस परम आनंद, परम सुख की अवस्था को पा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं। ❑

संसारियों के ज्ञान और सर्वत्यागियों के ज्ञान में बड़ा अंतर है। संसारियों का ज्ञान दीपक के प्रकाश के समान है, उससे घर के भीतर के अंश में ही उजाला होता है, उसके द्वारा अपनी देह, घर के काम, इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जा सकता। सर्वत्यागी का ज्ञान सूर्य के प्रकाश की भाँति है। उस प्रकाश से घर का भीतर और बाहर सब प्रकाशित हो जाता है, सब देख लिया जाता है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

ईश्वर को पाना ही है जीवन का परम लक्ष्य

इस संसार में हर व्यक्ति किसी-न-किसी उद्यम में लगा है। हर व्यक्ति किसी-न-किसी कर्म में प्रवृत्त है। कोई बुरे कर्म में प्रवृत्त है तो कोई अच्छे में। कोई पैसे के पीछे भागता दीख रहा है तो कोई विषयभोगों के पीछे। कोई अपने शरीर को तंदुरुस्त बनाने में लगा है तो कोई शरीर को सजाने-सँवारने में। कोई धनवान होना चाहता है, तो कोई पहलवान। कोई पद-प्रतिष्ठा का प्यासा है तो कोई यश और कीर्ति का। कोई विद्या की खोज में है तो कोई ब्रह्म की खोज में।

हर व्यक्ति किसी-न-किसी चीज की खोज में है, पर आखिर व्यक्ति इन चीजों की खोज में है क्यों? व्यक्ति क्यों चाहता है इन चीजों को? क्या कोई तंदुरुस्ती पाने मात्र के लिए तंदुरुस्ती चाहता है? क्या कोई सिर्फ पद-प्रतिष्ठा पाने के लिए ही पद-प्रतिष्ठा चाहता है? क्या कोई यश-कीर्ति पाने मात्र के लिए उसे चाहता है? क्या कोई पैसे पाने के लिए पैसे चाहता है। धन चाहता है?

इन प्रश्नों का उत्तर है—निश्चित ही नहीं। सत्य तो यह है कि कोई पैसे पाने के लिए पैसे नहीं चाहता। धन मात्र पाने के लिए धन नहीं चाहता। पद-प्रतिष्ठा पाने मात्र के लिए पद-प्रतिष्ठा नहीं चाहता। विषयभोगों को पाने मात्र के लिए विषय भोगों को नहीं चाहता। कोई बुरे कर्म करने मात्र के लिए बुरे कर्म नहीं करता।

यदि आप दिन-रात पैसे और धन के पीछे दौड़ते-भागते किसी व्यक्ति से पूछें कि भला तू रात-दिन पैसे और धन के पीछे ही क्यों पड़ा है? तू पैसे क्यों चाहता है? तो इसके उत्तर में वह व्यक्ति यही कहेगा कि मैं उस पैसे से अच्छे घर बनाऊँगा। उद्योग बढ़ाऊँगा, शादी करूँगा, परिवार बढ़ाऊँगा, खाने-पीने की ढ़ेर सारी चीजें खरीदूँगा, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनूँगा आदि-आदि। तब आप यदि उससे पुनः पूछें कि तुम इन भोगों को क्यों चाहते हो तो वह यही उत्तर देगा कि उन चीजों को, भोगों को प्राप्त कर लेने पर मैं सुखी हो जाऊँगा; क्योंकि उन चीजों को पा लेने पर सुख प्राप्त होता है, आनंद प्राप्त होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि हर व्यक्ति जो कुछ भी कर रहा है, खोज रहा है, चाह रहा है वह सुख पाने के लिए, आनंद पाने के लिए कर रहा है। यहाँ तक कि बुरे कर्मों में लिप्त रहने वाला व्यक्ति भी उन कर्मों से सुख पाने, आनंद पाने की आशा में उसे कर रहा है। फिर यदि आप उस व्यक्ति से पूछें कि तुम आनंद क्यों चाहते हो तो इस प्रश्न के उत्तर में कोई यह नहीं कहेगा कि मैं अमुक प्रयोजन या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आनंद चाहता हूँ अर्थात विद्या, बल, धन, संतान, पद, प्रतिष्ठा, तंदुरुस्ती, यश, कीर्ति आदि चीजें पाने के पीछे एक ही उद्देश्य है—आनंद पाना।

कोई भी व्यक्ति दुःख पाने के उद्देश्य से कोई कर्म नहीं करता। बुरे कर्म भी आनंद पाने की आशा में ही करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हर व्यक्ति में आनंद पाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, नैसर्गिक प्रवृत्ति है, पर अच्छे-बुरे सभी लोगों में यह नैसर्गिक प्रवृत्ति क्यों है भला? इसका मूल कारण एक ही है और गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार वह मूल कारण है—

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥

अर्थात जीव ईश्वर का अंश है। वह चेतन, अमल और सुख की राशि है; क्योंकि जीवात्मा सत्- चित्-आनंद रूप परमात्मा का अंश है। इसलिए उसमें आनंद पाने की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। वह आनंद पाना चाहता है, आनंद में होना चाहता है, आनंद में जीना चाहता है। आनंद में ही सोना, जागना, हँसना, रोना, खाना, खेलना, उठना, बैठना और दौड़ना चाहता है। वह हर पल आनंदित रहना चाहता है। मनुष्य में आनंद पाने की नैसर्गिक प्रवृत्ति इसलिए है; क्योंकि वह परमानंद, ब्रह्मानंद के आदि स्रोत परमात्मा का अंश है।

जीव का नैसर्गिक स्वरूप है—चिन्मय सत्ता, चेतन सत्ता, पर समस्या यह है कि जीव अपने स्वाभाविक, नैसर्गिक स्वरूप से अनभिज्ञ है, अनजान है। वह अपने वास्तविक यथार्थस्वरूप से अनभिज्ञ है, अनजान है इसलिए धन, बल, यश, कीर्ति, पद-प्रतिष्ठा के पीछे दौड़ रहा है, आनंद की खोज में। जो चीज जहाँ है, वह वहीं मिल सकती है। मनुष्य को क्षणिक इंद्रिय सुख, भौतिक सुख-साधनों से मिल सकता है, पर आत्मा को शाश्वत सुख परमानंद तो आनंद के आदिस्रोत परमात्मा से ही प्राप्त हो सकता है। तब हम करें क्या?

इसके लिए हमें अपनी आत्मा में नित्य परमात्मा का ध्यान करते रहना होगा। जैसे जमीन की खुदाई करते-करते जमीन के बहुत नीचे जाकर अंततः जल का अक्षय स्रोत फूट पड़ता है, वैसे ही आत्मा में परमात्मा का ध्यान करते-करते अंततः आत्मा में परमानंद के स्रोत परमात्मा प्रकट होते हैं और हम सदैव के लिए आनंद से आप्लावित हो जाते हैं।

अस्तु हमारे लिए उचित यही है कि यदि हम शाश्वत सुख, परमानंद चाहते हैं तो एक तरफ भौतिक सुख पाने के लिए भौतिक पुरुषार्थ करने के साथ-साथ, नित्य आत्मिक, आध्यात्मिक पुरुषार्थ भी करें। अपनी आत्मा में परमात्मा का नित्य ध्यान करना यही आत्मिक पुरुषार्थ है, आध्यात्मिक पुरुषार्थ है, जो हमें आनंद के आदिस्रोत परमात्मा से जोड़कर परमानंद से आप्लावित कर सकता है।

हम संसार में हैं, हम भौतिक जीवन में हैं तो हमें भौतिक सुख-साधनों को पाने के लिए भौतिक पुरुषार्थ तो करना ही है, पर हम संसार में रहते हुए कभी भी ईश्वर का विस्मरण नहीं करें; क्योंकि वे ही तो आनंद का आदिस्रोत हैं। इस संसार में हमें कैसे रहना चाहिए, इसको लेकर रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों को ऊखल में धान कूटने वाली नारी का उदाहरण दिया करते थे।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

—महाभारत

अर्थात धर्म का सार सुनो, सुनकर उसे मन में धारण करो। जो बात अपने को पसंद न हो, उसे दूसरों के लिए व्यवहार में मत लाओ।

वे कहते थे कि बंगाल के गाँव में ऊखल में धान कूटने वाली महिलाएँ एक हाथ में अपने छोटे बच्चे को गोद लिए रहती हैं और दूसरे हाथ में मूसल लेकर ऊखल में उसे डालती हैं, निकालती हैं और धान कूटती जाती हैं, पर ऊखल में मूसल चलाते हुए भी उनका ध्यान गोद में लिए अपने बच्चे पर बना रहता है। वे ऊखल में मूसल चलाते हुए भी इस बात का ध्यान रखती हैं कि उनका बच्चा उनकी गोद से नीचे न गिर जाए। उसी प्रकार तुम संसार में रहकर अपना कार्य करो, पर ध्यान हमेशा ईश्वर पर लगाए रखो। इसी में जीवन की सफलता है। इसी में आनंद है और यही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य भी है। ❑

निष्काम भक्ति ही है श्रेष्ठ भगवद्भक्ति

सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान भगवान ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त हैं, पर ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त परब्रह्म परमेश्वर की अपनी अंतरात्मा में अनुभूति पाने के लिए हमारा अंत:करण पवित्र होना चाहिए। मलिन मन, अहंकार और वासना बुद्धि से परब्रह्म परमेश्वर को न तो देखा जा सकता है न ही उनकी अनुभूति हो सकती है। सत्य तो यह है कि भगवान को पाने के लिए भगवान को पूजता ही कौन है।

बहुतायत लोग भगवान की पूजा अपनी इच्छापूर्ति, मनोकामना पूर्ति के लिए ही करते हैं। ऐसे विरले ही होते हैं, जो भगवान को पाने के लिए भगवान की पूजा करते हैं। वे कुछ पाने के लिए नहीं, बल्कि भगवान के लिए ही भगवान की पूजा करते हैं और जो सचमुच सच्चे, सरल और निष्कपट भाव से नित्य निरंतर भगवान का स्मरण, भजन, ध्यान, पूजन किया करते हैं उन्हें अपने अंत:करण में भगवान की दिव्य अनुभूति अवश्य ही होती है।

शबरी, संत नामदेव, संत एकनाथ, संत सूरदास, मीराबाई, संत तुकाराम, संत कबीरदास, श्रीरामकृष्ण परमहंस, परमपूज्य गुरुदेव आदि ऐसे ही संत थे जो हर पल, हर जगह भगवान की अनुभूति पाते थे। जब तक भक्त का भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण नहीं होता, तब तक भक्त को भगवान की अनुभूति नहीं होती, पर जब भक्त अपनी इच्छा, आकांक्षा, अहंकार, वासना, लोभ, मोह आदि से मुक्त हो पूर्णभाव से अपने आप को भगवान के श्रीचरणों में समर्पित कर देता है, तभी भक्त के हृदय में भगवान का प्रकाश, ज्ञान व आनंद के रूप में उतरता है और वह स्वयं को निहाल पाता है।

समस्या यह है कि अधिकांशत: लोग भगवान की प्रतिमा को चंदन, पुष्प, जल, अक्षत आदि अर्पित कर देने मात्र को ही भगवद्भक्ति मानते हैं। अपने मन की मलिनता और हृदय की कलुषता को दूर कर वे मन को पवित्र और हृदय को भगवान के लिए प्रेमभाव से भर लेने का प्रयास-पुरुषार्थ, योगाभ्यास कर ही नहीं पाते।

यह सत्य है कि गीता में भगवान ने कहा है कि भक्त के द्वारा अर्पित पुष्प, पत्र, जल, अक्षत आदि को मैं प्रीतिसहित ग्रहण करता हूँ, पर यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि निर्मल मन व भगवान के लिए प्रेम से भरे हुए हृदय वाले भक्त के द्वारा अर्पित पत्र, पुष्प, जल, अक्षत आदि ही भगवान प्रीतिसहित ग्रहण करते हैं।

अस्तु भगवान को पाने के लिए, उन्हें अपने हृदय में, आत्मा में अनुभव करने के लिए मन का निर्मल होना और हृदय का शुद्ध प्रेम से भरा हुआ होना—दोनों ही आवश्यक हैं और इसके साथ ही ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास भी आवश्यक है; क्योंकि हम तभी भगवान को सर्वत्र देखा पाएँगे, निहार पाएँगे, खोज पाएँगे, पहचान पाएँगे।

जब हृदय भगवान के लिए विशुद्ध प्रेम से भरा हुआ हो तो भक्त की दृष्टि भी प्रेम से भरी हुई होती है और उस प्रेमदृष्टि से जब वह संसार को देखता है तो उसे सर्वत्र भगवान-ही-भगवान दिखाई पड़ने लगते हैं। उसे जन-जन में, कण-कण में भगवान दिखने लगते हैं, अनुभूत होने लगते हैं।

पाषाण प्रतिमाओं में ही नहीं, उसे ब्रह्मांड के कण-कण में भगवान दिखाई पड़ने लगते हैं, अनुभव होने लगते हैं। इस प्रकार सर्वत्र भगवान की उपस्थिति और अनुभूति को जानकर भक्त कभी भी बुरे कर्मों, पापकर्मों में लिप्त नहीं होता; क्योंकि कर्म करते हुए उसे हर जगह भगवान का स्मरण होता है, उनकी उपस्थिति का आभास होता है। इसलिए उसके हर कर्म निष्पाप, निष्काम और दिव्य होते हैं। वह स्वयं को ईश्वर के हाथों का एक उपकरण मात्र मानता हुआ निष्काम भाव से जगत् में अपना कर्त्तव्य कर्म करता हुआ सदा आनंदित रहता है। इसलिए निष्काम, निश्छल, निर्दोष, निर्विकार, निरहंकार व पूर्ण समर्पण तथा प्रेमभाव से की गई भक्ति ही श्रेष्ठ भक्ति है। निस्संदेह हमारी भक्ति भी ऐसी ही होनी चाहिए। ❑

देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर को अपने पास संचित अकूत धन संपदा का अभिमान हो गया। इस अहंकार से प्रेरित होकर वे भगवान शिव के पास पहुँचे और उनसे निवेदन करने लगे— ''महादेव! मैं एक भव्य भोज का आयोजन कर रहा हूँ। उसमें देव, यक्ष, गंधर्व, किन्नर सभी लोग आमंत्रित हैं। यदि आप और माँ पार्वती भी वहाँ आएँ तो अच्छा रहेगा।''

भगवान शिव उसके मंतव्य को भाँप गए और बोले—''हमारा प्रतिनिधित्व गणेश कर लेंगे।'' निर्धारित समय पर गणेश जी भोज में पहुँचे। उन्होंने पहुँचते ही कुबेर से कहा—''मुझे भूख लगी है, कृपया भोजन करा दें।''

कुबेर ने खाना परोसना प्रारंभ किया, पर गणेश जी सारे व्यंजन एक के बाद एक समाप्त करते गए। देखते-देखते कुबेर का खजाना चुकने लगा तो उन्होंने घबराहट में भोजन परसवाना बंद कर दिया।

गणेश जी क्रोध में बोले—''कैसे दरिद्रों का भोज है। यहाँ एक का पेट नहीं भर सकता तो इतने सारे व्यक्तियों को क्यों आमंत्रित किया ?'' कुबेर का अहंकार चूर-चूर हो चुका था। उसने अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा माँगी।

व्यावहारिक अध्यात्म के पंचशील

अध्यात्म जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है, जो इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले मनुष्य जीवन को सार्थक बनाता है। अध्यात्म गहनतम स्तर पर समग्र जीवन जीने का नाम है, जो व्यक्ति को पूर्णता के पथ पर गतिशील रखता है। यह अस्तित्व को इसके हर स्तर पर जीने की प्रक्रिया है। परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व एवं समूचा जगत् इसके दायरे में आता है। इसमें जीवन के बाह्य-आंतरिक, लौकिक-पारलौकिक, जड़-चेतन सभी आयाम समा जाते हैं। इस तरह अध्यात्म संपूर्णता में जीने की सम्यक दृष्टि एवं जीवन-साधना का नाम है, जिसे निम्न पंचशीलों में समेटते हुए साधा जा सकता है।

स्वस्थ शरीर-निरोगी काया इसका पहला आयाम है। स्वस्थ शरीर सुखी जीवन की पहली शर्त है। यदि शरीर स्वस्थ है, तो उसी के आधार पर जीवन के शेष पुरुषार्थ संभव होते हैं। रुग्ण शरीर के साथ जीवन के सामान्य कार्यों तक को पूरा करना दुष्कर हो जाता है और फिर इस अवस्था में किसी बड़ी उपलब्धि या महत्तर कार्य की आशा नहीं की जा सकती।

इस स्थिति में जीवन की गाड़ी किसी तरह आगे बढ़ती रहे, इतना ही पर्याप्त रहता है, जिसमें किसी पर अनावश्यक बोझ न बनना पड़े। दूसरों पर आश्रित भारभूत जीवन की त्रासदी को देखते हुए समय रहते शरीर को स्वस्थ व निरोगी रखना पहला कर्त्तव्य बनता है।

कितनी भी व्यस्तता का आलम क्यों न हो, शारीरिक स्वास्थ्य की अधिक देर तक उपेक्षा उचित नहीं। इस पर ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। बेहतरीन है कि इसके निमित्त नित्य कुछ समय निर्धारित हो, जिसमें न्यूनतम व्यायाम, भ्रमण, आसन-प्राणायाम आदि की प्रक्रियाएँ शामिल हों। व्यस्ततम दिनचर्या के बीच भी इसके निमित्त निकाले गए कुछ पल दूरदर्शिता भरे समझदारी वाले कदम माने जाएँगे, जिनके आधार पर फिर आध्यात्मिक उत्कर्ष की बात सोची जा सके, जीवन का भव्य प्रासाद खड़ा किया जा सके तथा जीवन को पूर्णता में जीने का उपक्रम साधा जा सके।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके लिए स्वस्थ-संतुलित जीवनशैली, उचित आहार-विहार के अनुशासन का पालन करना होगा, संयम-सदाचार को जीवन का अभिन्न अंग बनाना होगा। बिना अधिक देहबोध व आसक्ति के शरीर को भगवान का मंदिर मानते हुए ईश्वर के अनुशासन के अनुरूप जीवन को ढालना होगा।

सकारात्मक चिंतन एवं आशावादी मनःस्थिति दूसरा आधार है, जिसके दायरे में मन, बुद्धि की सृजनात्मक दिशाधारा आती है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना होगा। इसे सतत सकारात्मक दिशा में नियोजित किए रखना होगा, श्रेष्ठ चिंतन में निमग्न रखना होगा। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि जीवन का लक्ष्य स्पष्ट हो, जिसका अपने स्वभाव, प्रकृति व क्षमता के अनुकूल निर्धारण हो। इसके साथ बुद्धि को अनवरत स्वाध्याय का अनुपान मिलता रहे, जिससे कि वह श्रेष्ठ चिंतन में निमग्न रह सके और व्यक्ति जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच सम व

संतुलित अवस्था में आशा का दामन थामे हुए आनंदपूर्वक विचरण कर सके।

इसके साथ आत्मनिर्भर जीवन का आदर्श तीसरा महत्त्वपूर्ण सोपान है। इसमें जहाँ आत्मसम्मान व आत्मविश्वास का विकास होता है तो वहीं एक स्वाभिमान से भरे स्वावलंबी जीवन की परिकल्पना साकार होती है। पराश्रित एवं परावलंबी जीवन किसी अभिशाप से कम नहीं, जिसमें पग-पग पर आत्मग्लानि व हीनता का भाव व्यक्ति को क्लांत किए रहता है।

जीवन के हर क्षेत्र में यथासंभव स्वावलंबन के लिए प्रयास करते रहना हर स्वाभिमानी व्यक्ति का कर्त्तव्य है, जो एक गौरवपूर्ण जीवन को संभव बनाता है। इसके लिए निरंतर उन कौशलों का विकास करते रहना चाहिए, जिनके आधार पर व्यक्ति की योग्यता का इतना विकास हो कि वह आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक आधार पर एक स्वतंत्र एवं स्वाभिमानी जीवन जी सके।

चौथा सोपान है भावनात्मक संतुलन एवं कर्त्तव्यपरायण जीवन, जिसमें अपने साथ दूसरों के भी उत्कर्ष का भाव हो, स्वार्थ के साथ परमार्थ का भी संगम-समन्वय हो, जो भावनात्मक संतुलन का आधार बनता है। इसी आधार पर परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह संभव हो पाता है। इस संदर्भ में वाणी का विशेष महत्त्व रहता है, जिसका प्रयोग सोच-समझकर ही किया जाए।

जितना आवश्यक हो उतना ही बोलें, अधिक बोलने पर प्राय: ऐसे शब्द मुँह से निकल जाते हैं, जिन पर पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसलिए कम बोलें, तौलकर बोलें व आपसी व्यवहार में सकारात्मक योगदान दें। परिवार व समूह में अपने वाणी-व्यवहार के साथ इस तरह सकारात्मकता का प्रसार किसी साधना से कम नहीं। इसके साथ उस पुण्य का अर्जन होता है, जो जीवन को आंतरिक रूप से पुष्ट करता है व बाहरी जीवन को सफल व सार्थक बनाता है।

जीवन में अध्यात्म का समावेश, पाँचवाँ पंचशील है। लौकिक जीवन में सफल, सार्थक जीवन के साथ पारलौकिक आयाम को भी साधना इसके अंतर्गत आता है, जो व्यक्ति के लौकिक प्रयास-पुरुषार्थ को पूर्णता देता है। यह समझ आध्यात्मिक महापुरुषों, गुरुजनों के स्वाध्याय-सत्संग के प्रकाश में आत्मचिंतन के साथ विकसित होती है। अस्तित्व का लौकिक एवं पारलौकिक सत्य समझ आता है। लोक के साथ परलोक के सुधार का भी उपक्रम प्रारंभ होता है।

सच्ची उपासना, सही जीवन-साधना एवं समष्टि की आराधना। यही वह मार्ग है, जो व्यक्ति को मानव से देवमानव, देवदूत, ऋषि स्तर तक पहुँचाता है। —*परमपूज्य गुरुदेव*

इस सतत परिवर्तनशील नश्वर जीवन के मध्य एक शाश्वत जीवन दर्शन उभरता है। आत्मा को प्रधानता देने का क्रम प्रारंभ होता है। निष्काम कर्म, प्रार्थना आदि जीवन के अंग बनते जाते हैं। उपासना, साधना, आराधना आदि का महत्त्व समझ में आता है।

आत्मबोध के साथ तत्त्वबोध की गहराइयों में जीवन का मर्म बोध प्रत्यक्ष होता है और एक सफल एवं सार्थक जीवन के माने प्रकट होना प्रारंभ होते हैं और अध्यात्म का उभार समग्र जीवन की साधना के रूप में होता है।

इन पंचशीलों के साथ व्यक्ति के जीवन का समग्र विकास सुनिश्चित होता है और वह मानवीय गरिमा के अनुरूप सर्वांगीण उत्कर्ष के पथ पर अग्रसर होता है। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा–10

सादगी भरा जीवन

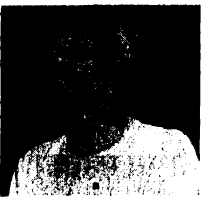

वे दृढ़तापूर्वक कहते रहे कि महानता यदि वास्तविक हो तो उसका सही आवरण सज्जनों जैसी सादगी ही हो सकती है। आज की स्थिति में संन्यासी जैसी भावना वाले को भी सामान्य वेशभूषा में ही रहना चाहिए; क्योंकि उस आवरण की आड़ में इतने निरर्थक लोग छिप गए हैं कि अब सज्जन भी उसी में छिपें तो उससे न केवल बदनाम होंगे, वरन आडंबरियों को भी जनता की आँखों में खटकने से बचने की आड़ मिलती रहेगी।

संत का वेश बनाने से संत की वास्तविकता बनाना कठिन है। सो उनका यह शिक्षण और प्रयोग रहा कि सामान्य नागरिक का सरल जीवनयापन करते हुए संत की महत्ता को घर-गृहस्थी के बीच ही विकसित किया जाए ।

गुरुदेव ने अपने महान जीवन की सुगंधि से अपने छोटे से परिवार को इस प्रकार सुगंधित किया कि देखने वालों के मुख से यही निकलता रहा, 'धन्यो गृहस्थाश्रम:' अर्थात ऐसा गृहस्थ सचमुच ही धन्य है, जिसमें महानता के समस्त आधार ओत-प्रोत हो रहे हैं। अपने बालकों से उन्हें संतोष न होता था, जितने अपने, उतने ही उन दूसरों के; जिनके पास बालकों के विकास की समुचित व्यवस्था नहीं थी। अपने और पराए के अंतर मिटाने के लिए उन्होंने सदा बाहर के बच्चों को अपने परिवार में सम्मिलित किए रहने की आवश्यकता समझी और इस बात का ध्यान रखा कि अपने और पराए के बीच स्नेहभाव से लेकर लालन-पालन तक में किसी प्रकार का भेदभाव तो नहीं हो रहा है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनके एक शिष्य ने प्रश्न किया—"क्या गृहस्थ लोगों को भगवान के दर्शन हो सकते हैं?" रामकृष्ण परमहंस बोले—"हो सकते हैं क्या, होते ही हैं। भगवान तो भक्ति के भूखे हैं, उन्हें तुम्हारे गृहस्थ होने या न होने से ज्यादा परेशानी नहीं। गृहस्थ यदि अपने कर्त्तव्यों का पालन करता रहे, बिना आसक्ति किए अपना कार्य करता रहे तो उसे भगवान मिलते ही हैं।" स्वामी रामकृष्ण परमहंस आगे बोले—"संसार में रहना मानो हाथ में तेल लगाकर कटहल काटने जैसा है। कटहल भी कट जाए और हाथ भी गंदे न हों। संसार में आसक्ति छोड़कर सारे कर्म करने चाहिए और अपने दायित्व निभाने चाहिए, यही मुक्ति का मार्ग है।"

सकारात्मक सोच से मिलती है सफलता

मनुष्य के जीवन की सच्चाई यह है कि इसमें हमेशा, हर कदम पर चुनौतियाँ खड़ी मिलती हैं। चुनौतियाँ कभी हमारे सामने होती हैं तो कभी, हम उनके सामने। अंतर मात्र इस बात का है कि कब हम सकारात्मक होते हैं और कब नकारात्मक। जीवन विद्या के मर्मज्ञों का अनुभव है कि हम जब सकारात्मक होते हैं तो हमारी ऊर्जा के समस्त आंतरिक स्रोतों में स्वत: स्पंदन आरंभ हो जाता है और धीरे-धीरे सारे ऊर्जाकेंद्र जाग्रत होने लगते हैं व उनमें अंतर्निहित शक्तियों का ऊर्ध्वगमन होने लगता है।

जीवन की सकारात्मकता थोड़े समय में ही हमारे भीतर स्फूर्ति और ताजगी का एहसास कराने लगती है। हमारा मनोबल-आत्मबल-संकल्पबल बढ़ने लगता है। ऐसी स्थिति में हम एक वीर योद्धा की भाँति चुनौतियों का सामना कर पाते हैं और उन पर विजय प्राप्त करना ही एकमात्र उद्देश्य हो जाता है। इसमें विजय सुनिश्चित होती है; क्योंकि इस तरह की सफलता के बीज हमारी सकारात्मकता से उत्पन्न होते हैं।

हमारी सकारात्मकता अथवा नकारात्मकता में ही सफलता और असफलता के बीज मौजूद होते हैं। सकारात्मकता हमारी सफलता को सुनिश्चित करती है और नकारात्मकता हमारी असफलता को सुनिश्चित कर देती है।

सकारात्मकता की सबसे बड़ी खूबी यही है कि कठिन-से-कठिन परिस्थितियाँ भी हम पर हावी नहीं हो पातीं। अंतर्मन कभी संघर्षों-चुनौतियों-समस्याओं के समक्ष भयभीत नहीं होता—घबराता नहीं। किसी कार्य अथवा लक्ष्य में यदि असफलता मिल भी जाए तो सकारात्मक व्यक्ति के लिए यह असफलता भी एक ऐसी सीढ़ी या सोपान बन जाती है जो उसे और अधिक साहस और ऊर्जा से भर देती है।

सकारात्मकता की स्थिति में व्यक्ति, मार्ग की प्रत्येक अड़चनों-बाधाओं को अपनी शक्ति-सामर्थ्य और सफलता की प्राप्ति का माध्यम बना लेता है। विपरीतताओं-चुनौतियों से वह कभी डरता नहीं, वरन मजबूती से उनका सामना करता है। ऐसे में उसके व्यक्तित्व की सारी खूबियाँ धीरे-धीरे प्रकट होने लगती हैं।

जीवन की प्रकृति का एक सामान्य नियम यह है कि जब आप किसी चुनौती को स्वीकार करते हैं और उस पर विजय प्राप्त करते हैं तो उपहारस्वरूप एक नई क्षमता की उपलब्धि होती है। क्षमता और सामर्थ्य का अपरिमित भंडार तो सभी में अंतर्निहित होता है, परंतु एक सकारात्मक व्यक्ति के व्यक्तित्व में ही भीतर की क्षमताएँ और संभावनाएँ निखरकर आती हैं।

जीवन की प्रत्येक चुनौती, हरेक संघर्ष हमारी क्षमताओं-संभावनाओं को उभारने-निखारने का अवसर होता है, लेकिन इन अवसरों का लाभ व्यक्ति की सकारात्मक प्रवृत्ति से ही संभव हो पाता है। नकारात्मक व्यक्ति चुनौतियों-संघर्षों से भयभीत हो भाग खड़ा होता है, इसलिए उसके लिए व्यक्तित्व को क्षमतावान बनाने वाले अवसरों के दरवाजे सदैव बंद ही रहते हैं।

किसी व्यक्ति के जीवन में असफल हो जाने के पीछे का यही मूल कारण है। असफलता का

तात्पर्य ही है कहीं-न-कहीं व्यक्तित्व की शक्ति-सामर्थ्य का अवरुद्ध हो जाना, क्षय हो जाना। यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि नकारात्मक चिंतन और नकारात्मक भावनाएँ हमारी क्षमताओं के विकास में भारी बाधाएँ पैदा करते हैं।

व्यक्ति स्वयं के प्रति एवं परिस्थितियों के प्रति जहाँ-जहाँ नकारात्मक होता है, वहीं-वहीं असफल भी होता है। सफलता का मार्ग इसके विपरीत होता है। सफलता का आकलन दो ही दृष्टि से किया जाता है, एक व्यक्तित्व विकास के रूप में और दूसरा उपलब्धियों के रूप में। जीवन में इन दोनों मानदंडों को पूरा करने की एकमात्र शर्त है—व्यक्ति का हर दृष्टिकोण में सकारात्मक बने रहना।

सकारात्मकता के कारण ही जीवन की प्रत्येक चुनौती, हर संघर्ष का परिणाम जीत होती है। हरेक प्रयास और पुरुषार्थ की दिशा सही होती है। व्यक्तित्व विकसित और क्षमतावान बनने लगता है। सकारात्मकता की नींव पर ऐसे अनगिनत चमत्कार जीवन के धरातल पर प्रकट होने लगते हैं। जीवन के सूक्ष्म विज्ञान को हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि बखूबी समझते थे, इसलिए उन्होंने मनुष्य जीवन के प्रत्येक आयामों में सकारात्मकता बनाए रखने वाली प्रक्रियाओं-प्रेरणाओं को समाहित किया।

जप, तप, ध्यान, योग, स्वाध्याय, साधना, उपासना, भजन, कीर्तन जैसी अनेकों तकनीकों को दैनिक जीवनचर्या से जोड़कर ही हमारे ऋषियों ने आदर्श जीवनपद्धति का निर्माण किया। इसमें ऐसे जीवन सूत्र मौजूद हैं, जो व्यक्ति को कठिन-से-कठिन परिस्थितियों-चुनौतियों और संघर्षों के बीच भी सकारात्मक बनाए रखते हैं, परंतु दुर्भाग्य से मनुष्य ऐसी आदर्श जीवनपद्धति और जीवनसूत्रों को नजरअंदाज कर आधुनिक भोगवादी और भौतिकवादी जीवनशैली को अपनाकर स्वयं ही नकारात्मकता उत्पन्न करने वाले कारकों से जुड़ जाता है।

जीवन में सफलता और सुख, शांति, प्रसन्नता की प्राप्ति में सकारात्मकता की ही मुख्य भूमिका होती है और सकारात्मकता को सतत बनाए रखने के लिए एक खास जीवन-दृष्टि और जीवनपद्धति की। हमारी देव संस्कृति की विरासत में ये दोनों मौजूद हैं। आवश्यकता है सिर्फ इन्हें जीवन में उतारने और साकार करने की। स्वार्थ, अहं और भोग में लिप्त जीवन जल्द ही नकारात्मकता से भर जाता है और अंततः अनेकों समस्याओं व दुःखों का पर्याय बन जाता है।

नकारात्मकता से युक्त जीवन एक अभिशाप की तरह हो जाता है। ऐसे अभिशाप की स्थिति से बचने का उपाय यही है कि जीवन को सार्थक उद्देश्य और आदर्श जीवनपद्धति के अनुशासन में जिया जाए। सजगतापूर्वक स्वयं भी पड़ताल की जाए कि व्यक्तित्व के किसी भी स्तर पर, किसी भी रूप में नकारात्मकता तो नहीं पनप रही है? मनोभावों में हीन भावना, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, असंतुष्टि, भय, शंका, अपमानित समझना, तुलना करना, कमियाँ खोजते रहना, बुराई-निंदा की प्रवृत्ति जैसे अनेक लक्षण हैं, जिनसे भीतर की नकारात्मकता का पता चलता है। इससे बचने का सरलतम उपाय है जीवन में सकारात्मकता का अवलंबन करना।

परमपूज्य गुरुदेव का कथन है कि मनःस्थिति ही परिस्थितियों का निर्माण करती है, अतः सर्वप्रथम मनःस्थिति को सकारात्मक बनाने का उपाय करना चाहिए। यह उपाय नियमित, उपासना, ध्यान, योग, जप, स्वाध्याय आदि किसी भी रूप में हो सकता है। स्वयं के प्रति जागरूकता बनाए रखने के लिए आत्मबोध और तत्त्वबोध की साधना सर्वोत्तम जीवन सूत्र हैं।

इसके साथ ही कुछ विशेष बातों का अभ्यास अपनी सकारात्मकता को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक बनता है, जैसे—दूसरों को प्रोत्साहित

करना, स्वयं व दूसरों की कमियों को स्वीकार करते हुए अच्छाइयों पर ध्यान केंद्रित करना, स्वयं को गलतियों के लिए माफ करना, किसी अन्य से अपनी तुलना न करना, अपनी सामर्थ्य एवं क्षमताओं पर विश्वास करना, नकारात्मक लोगों व परिवेश से दूरी बनाए रखना, व्यवहार एवं चिंतन में उदारता एवं सहिष्णुता को बनाए रखना, समस्याओं-चुनौतियों के समक्ष पूर्ण आत्मविश्वास के साथ खड़े रहना, दूसरों के सहयोग एवं सेवा के अवसर को सौभाग्य समझना, अपने निर्धारित कर्त्तव्यों के प्रति ईमानदार बने रहना, बोलने में सदैव सकारात्मक व अच्छे शब्दों का चयन करना, जीवन में घटने वाली अच्छी बातों-अनुभवों के लिए स्वयं और ईश्वर के प्रति आभार प्रकट करना आदि।

एक बात और जो हमें यहाँ समझ लेनी चाहिए, वह यह कि सकारात्मकता का होना एक अच्छे एवं आदर्श व्यक्तित्व की विशेषता है, परंतु यह कोई जादुई या चमत्कारिक क्षमता नहीं है कि इसके होने से जीवन में परेशानियों-कठिनाइयों, संघर्षों का आना बंद हो जाएगा और सारी परिस्थितियाँ एवं लोग हमारे अनुकूल हो जाएँगे। ऐसा कदापि नहीं होता। परेशानियाँ, चुनौतियाँ, संघर्ष सब कुछ जीवन के उतार-चढ़ाव के रूप में आते रहेंगे। बस, सकारात्मक बने रहने से यह होगा कि ये सब हमारी क्षमताओं और सामर्थ्य को बढ़ाने वाले अवसरों-सोपानों में परिवर्तित होते जाएँगे और जीवन निरंतर प्रखरता, उत्कृष्टता और सार्थकता की दिशा में आगे बढ़ता जाएगा। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

मथुरा-वृंदावन रोड, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

विज्ञान की सीमा

विज्ञान पदार्थ जगत् को सच मानता है। इसके अध्ययन-अन्वेषण का आधार दृश्यमान पदार्थ है। यह विज्ञान की प्रगति का एक नमूना ही है कि चाँद पर घर बनाने की बात हो रही है, तो मंगल पर जीवन की संभावनाएँ तलाशी जा रही हैं। वहीं क्लोनिंग, टेस्ट ट्यूब बेबी, नैनो टेक्नोलॉजी और मशीनी मानव यानी रोबोट की परिकल्पना विज्ञान की शक्ति को दरसाने वाले चंद नायाब नमूने भर ही हैं, लेकिन आज भी कुछ ऐसी अनसुलझी गुत्थियाँ हैं, जिनका जवाब विज्ञान के पास भी नहीं है। आज हम आपको अवगत करा रहे हैं कुछ ऐसी बातों से, जो विज्ञान की समझ से भी परे हैं।

चिकित्सा की आंतरिक क्षमता—चिकित्सा विज्ञान ने भले ही कल्पना में आने वाली बातों को हकीकत के साँचे में ढालकर लोगों को यह मानने के लिए बाध्य किया हो कि शब्दकोश में असंभव नामक शब्द नहीं है, लेकिन आज भी कुछ ऐसे सिद्धांत हैं, जिनके जवाब विज्ञान आज तक तलाश रहा है।

उदाहरण के तौर पर प्लेसिबो इफेक्ट। इसके तहत किसी व्यक्ति को तमाम तरह की दवाएँ दी गईं, पर साथ ही उसकी आंतरिक क्षमताओं के आधार पर इलाज करने पर पाया गया कि शरीर को स्वयं को स्वस्थ करने की उसकी क्षमता आधुनिक चिकित्सा के मुकाबले लाख गुना बेहतर थी।

मनोवैज्ञानिक शक्ति—मनोवैज्ञानिक शक्ति और छठी ज्ञानेंद्रिय की परिकल्पना विज्ञान आज तक सुलझा नहीं पाया है। कुछ लोग मानते हैं कि अंतर्ज्ञान ऐसी मनोवैज्ञानिक शक्ति है, जो किसी चीज के बारे में पहले आभास होने की शक्ति प्रदान करता है।

इसको किसी सिद्धांत का नाम नहीं दिया जा सकता। वैज्ञानिकों ने जब इस बात को जाँचने की कोशिश की तो जो परिणाम आए वे नकारात्मक थे। कुछ शोधकर्त्ताओं ने तर्क दिए कि मनोवैज्ञानिक शक्ति को मापा नहीं जा सकता। विज्ञान ने इसे टेलीपैथी नाम दिया, लेकिन इसके बारे में कोई वैज्ञानिक सिद्धांत या परिकल्पना आज तक नहीं दे सका है।

मृत्यु अनुभव और उसके बाद की जिंदगी—जिंदगी का शाश्वत सत्य है—मृत्यु। इस संसार में जन्म लिया है जो मृत्यु तो होगी ही। शायद यह एक ऐसी बात है, जहाँ आकर विज्ञान पूरी तरह से असफल हो जाता है। इस दिशा में की गई शोधों में अनपेक्षित अनुभव निकलकर आए हैं।

मृत्यु के बाद पुन: जीवित हो उठने वालों में से कुछ को मृत्यु के बाद ऐसा लगा कि जैसे वे किसी गुफा में चले जा रहे हों, उसमें प्रकाश-सा आ रहा हो, एक तरह की शांति का एहसास उन्हें हुआ, पर इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं बताया जा सका।

अनभिज्ञात आकाशीय पिंड—इस बात में कोई संदेह नहीं है कि ऐसे आकाशीय पदार्थ होते हैं, जिन्हें पहचाना नहीं जा सकता। लोग इन्हें आकाश में देख तो सकते हैं, लेकिन इनकी

पहचान आज तक संभव नहीं हो पाई है। इसको लेकर कई परिकल्पनाएँ दी गईं और तर्क प्रस्तुत किए गए। किसी ने इसे दूसरे ग्रह का स्पेसक्राफ्ट कहा, तो किसी ने इन्हें उड़नतश्तरी या हवाई एयरक्राफ्ट कहा तो कुछ ने आकाशीय छल कहा। वैज्ञानिकों ने शोध के द्वारा कुछ यूएफओ (अनआइडेंटीफाइड फ्लाइंग ऑब्जेक्ट) को पहचानने की कोशिश की, पर कुछ आज भी वैज्ञानिकों के लिए रहस्य बने हुए हैं। वहीं आकाशीय पिंडों से जुड़ी कुछ घटनाओं की गुत्थी रहस्य ही बनी हुई है।

डेजा वू (पूर्वानुभव)—डेजा वू एक फ्रेंच वाक्यांश है, जिसका मतलब होता है पहले से देखा हुआ। जिंदगी में कई लोगों के साथ कुछ चीजों और जगहों को देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे पहले से वे उस जगह को जानते हों, उस जगह से उनका कोई नाता हो।

उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति का किसी नए स्थान पर जाकर ऐसा महसूस करना कि जैसे पहले से ही वह इस स्थान से पूरी तरह परिचित है। अंतर्ज्ञान के ऊपर वैज्ञानिकों द्वारा किए गए कई शोधों में इसमें शोध करने की कोशिश की गई तो परिणामों में तमाम तरह की भिन्नता और उनके प्राकृतिक होने की बात सामने आई, पर यह बात भी महज विज्ञान का रहस्य ही बनकर रह गई।

भूत—लोग इसे अंधविश्वास का नाम देते हैं, तो कई इसे आत्मा का मुक्त न हो पाना मानते हैं। इनसे जुड़ी कहानियाँ, किस्से सुनकर हमारा बचपन पला-बढ़ा है। एक छायादार शरीर, जिसका मात्र एहसास है, लेकिन प्रमाण नहीं।

आभास—इसका संबंध छठी ज्ञानेंद्रिय से है। इस बात पर कई कथानक और फिल्में बनाई जा चुकी हैं। लोग इंद्रिय की इस शक्ति को मानते हैं। वहीं विज्ञान मनुष्य के पास इस विशेष क्षमता के होने की बात से इनकार भी नहीं करता। विज्ञान कहता है कि कुछ बातों का आभास मनुष्य को पहले हो जाता है, लेकिन शरीर की इस अद्भुत शक्ति के बारे में विज्ञान के पास आज तक कोई सशक्त उत्तर नहीं है।

बिगफुट—लंबे, बड़े बालों वाली मानव सदृश एक आकृति जिसके बारे में वैज्ञानिकों के बीच आज भी बहस जारी है। कुछ इसकी उपस्थिति को पूरी तरह नकारते हैं, तो कुछ इसके होने को स्वीकारते हैं।

यह मुख्यत: अमेरिका के सुदूर जंगलों में पाए जाते हैं। पूरे विश्व में इन्हें अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। तिब्बत और नेपाल में इन्हें येती के नाम से पुकारते हैं तो ऑस्ट्रेलिया में योवी के नाम से। ऐसा माना जाता है कि हजारों की संख्या में बिगफुट होते हैं, लेकिन आज तक इनके शरीर का अवशेष जंगलों में नहीं मिल सका है। वहीं विज्ञान इनके न होने की बात आज तक प्रमाणित नहीं कर सका है। विज्ञान के लिए इनके होने की पुष्टि करना या न करना बहुत बड़ी समस्या है।

द टाओस हम—मैक्सिको के एक छोटे से शहर या टाओस में लोगों ने एक ऐसी अजीब भिनभिनाहट सुनी, जो लोगों को आज तक सोने नहीं देती। सन् 1977 में ब्रिटेन के एक अखबार में इससे जुड़े 800 पत्र आए, जिसमें लोगों की तरफ से इस भिनभिनाहट की शिकायत आई। लोगों ने शिकायत दर्ज की कि इसकी वजह से वे सो नहीं पाते, उन्हें घबराहट रहती है, साँस की तकलीफ हो गई है, न तो वे लिख पाते हैं और न ही पढ़ पाते हैं।

सन् 1993 में मैक्सिको के साथ मिलकर उत्तरी अमेरिका ने इस ध्वनि के स्रोत का पता लगाने की शुरुआत की। कुछ वैज्ञानिकों ने तर्क

दिया कि वे विद्युत चुंबकीय तरंगें हैं, तो कुछ ने कहा कि यह ध्वनियों का आपस में टकराव है, लेकिन इसके स्रोत के बारे में आज तक पता नहीं लगाया जा सका है।

रहस्यपूर्ण गुमशुदगी—लोगों का अचानक गुम होना आज भी विज्ञान के लिए एक रोचक पहेली है। वे लोग कहाँ चले जाते हैं। अगर किसी दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं तो ऐसे में फॉरेंसिक साइंस के लिए यह जान पाना संभव होता, परंतु फॉरेंसिक साइंस के पास भी लोगों के अदृश्य होने वाली घटनाओं का कोई जवाब नहीं है। उनकी खोज के लिए एकमत वाला कोई सिद्धांत आज तक दिया नहीं जा सका है। इन घटनाओं को यहाँ लिखने का तात्पर्य यही है कि प्रकृति केवल दृश्य नहीं है, बल्कि यह अदृश्य भी है। यह कहना सही होगा कि अदृश्य ही दृश्य सत्ता को नियमित एवं नियंत्रित करती है।

ऐसे में विज्ञान के पास इसका कोई जवाब नहीं है। विज्ञान को अपनी सीमा से एक कदम आगे बढ़ना होगा, ताकि इन अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़े जा सकें। ❑

शेख फरीद अपने शिष्यों के साथ बैठे थे। अध्यात्म के गूढ़ एवं गहन विषयों पर विचार-विमर्श हो रहा था। एक शिष्य के मन में प्रश्न उभरा और उसने शेख साहब से पूछा—"हजूर! कहते हैं कि ईसामसीह को जिंदा सूली पर लटका दिया गया और उन्हें दरद नहीं हुआ। मंसूर को भी पत्थरों के वार झेलने पड़े, पर वे जरा भी नहीं कराहे। क्या ऐसा संभव है?"

शेख फरीद मुस्कराए और अपने शिष्य को एक साबुत नारियल देते हुए बोले—"इसमें से गिरी निकाल सकते हो।" शिष्य बोला—"हजूर! यह नारियल अभी पूरा पका नहीं है। पके और सूखे नारियल का खोल, गिरी से अलग हो जाता है तो उसे निकालना आसान है।"

शेख फरीद बोले—"बेटा! ठीक इसी प्रकार, जिन इनसानों की रूह उनके जिस्म से लगाव खो देती है, उनके ऊपर भी जिस्मानी तकलीफों का असर नहीं होता।" निरासक्त व्यक्ति शरीर होते हुए भी उसके बंधनों से मुक्त होते हैं और परमात्मचेतना में स्वच्छंद भ्रमण करते हैं।

जन्म-मृत्यु एवं जीवन का शाश्वत प्रवाह

जन्म और मृत्यु, दोनों ही सामान्य इनसान के लिए पहेली जैसे हैं। जन्म से पूर्व क्या था और मृत्यु के बाद क्या होता है, यह सहज रूप में स्पष्ट नहीं होता, किंतु द्रष्टा ऋषियों की प्रकाशपूर्ण दृष्टि में जन्म और मृत्यु सिर्फ संयोग मात्र नहीं हैं। मानव जीवन केवल आकस्मिक उत्पत्ति नहीं है। वह एक क्रमिक शृंखला में कड़ी है, जिसके द्वारा आत्मा अपने प्रयोजन को क्रमशः विकसित करके मानवीय आत्मचेतना के द्वारा कार्य करती है। आत्मचेतना के शाश्वत काल में जीवन और मृत्यु दिवस-रात की तरह घटित होते रहते हैं।

ऋग्वेद के ऋषि इसी तत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मृत्यु के उपरांत जब पंचतत्त्व अपने-अपने में मिल जाते हैं, तब जीवात्मा बची रहती है और वह जीवात्मा ही दूसरी देह धारण करती है। इस तरह जीवात्मा के पुनर्जन्म की बात वेदों में स्पष्ट रूप में कही गई है। इसी तरह अथर्ववेद में ऐसे मंत्रों की भरमार है, जिनमें पुनर्जन्म पर किसी-न-किसी तरह प्रकाश डाला गया है। इसके ऋषि कहते हैं कि अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीर के साथ संयुक्त होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में पुनर्जन्म के ध्रुवसत्य को कुछ यों व्यक्त किया गया है—**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।** योगदर्शन के अनुसार अविद्या आदि क्लेशों के जड़ होते हुए उसका परिणाम जन्म, मृत्यु, आयु और भोग होता है। सांख्य दर्शन के प्रथम सूत्र के अनुसार—पुनर्जन्म के कारण ही आत्मा के शरीर, इंद्रियों तथा विषय से संबंध जुड़ते रहते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार पैदा हुए प्राणी का मरकर फिर जन्म होता है।

इसी तरह पश्चिमी दर्शन में भी पुनर्जन्म के सत्य पर प्रकाश डाला गया है। प्लेटो ने तो दर्शन की व्याख्या मृत्यु तथा मरण का प्रदीर्घ अभ्यास कहकर की है। प्लुटार्क और सोलोमन भी पुनर्जन्म में आस्था रखते थे। पाइथागोरस का विचार था कि साधुता का पालन करने पर आत्मा का जन्म उच्चतर लोकों में होता है और दुष्कृत आत्माएँ निम्न पशु आदि योनियों में आती हैं। स्पिनोजा, हर्टली तथा प्रीस्टले का आत्मा के अमरत्व पर विश्वास था। रूसो के शब्दों में वास्तविक जीवन का प्रारंभ मृत्यु के बाद होता है। क्रिस्टन वुल्के के अनुसार आत्मा सूक्ष्म होती है और हमारे गुप्त कर्म ही वर्तमान जीवन के कारण हैं।

काण्ट के मत में प्रत्येक आत्मा मूलतः शाश्वत है। फिक्टे के अनुसार—मृत्यु, आत्मा के जीवन प्रवाह में एक विश्राम स्थिति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शेलिंग के मतानुसार—उच्च आत्माएँ उच्च नक्षत्रों में जन्म लेती हैं। नोवालिस के शब्दों में जीवन है कामना और कर्म हैं उसके परिणाम। जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु हैं और इनमें से गुजरते हुए आत्मा अमरता को प्राप्त करती है। हेगल के मत में सभी आत्माएँ पूर्णता की ओर बढ़ रही हैं तथा जीवन और मृत्यु इनकी अवस्थाएँ हैं। इस तरह अस्तित्व के शाश्वत प्रवाह में जीवन और मृत्यु अपनी सम्यक व्याख्या व अर्थ को पाते हैं।

आज परामनोविज्ञान की खोजों से भी यह सिद्ध हो चुका है कि मृत्यु केवल स्थूलशरीर को ही

नष्ट कर पाती है, मरने के बाद भी मृत व्यक्ति की आत्मा इस संसार के व्यक्तियों पर प्रभाव डालती रहती है। दि स्टोरी ऑफ साइकिक साइन्स में हैरवार्ड कैरिंगटन लिखते हैं कि इस कारण स्थूलशरीर को ही व्यक्तित्व मानना तथा यह कहना कि स्थूल शरीर के समाप्त होने पर व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार से है, जिस प्रकार से यह कथन कि बिजली का बल्ब फूट जाने पर या उसके फ्यूज हो जाने पर बिजली ही नहीं रह जाती और उस बल्ब के स्थान पर कोई बल्ब ही नहीं जल सकता। व्यक्तित्व की इस प्रकार की धारणा मूर्खतापूर्ण धारणा है।

प्रो. एस.सी. नारथ्राप कहते हैं कि आत्मा के अमरत्व का निषेध करने वाले पाश्चात्य जड़वादी भी भौतिक शास्त्रांतर्गत शक्ति तथा अचेतन द्रव्य की अध्यक्षता को मानकर एक तरह से अमरत्व की ही स्वीकृति देते हैं। नारथ्राप के अतिरिक्त अन्य आधुनिक वैज्ञानिक भी मृत्यु के बाद व्यक्तित्व विद्यमान रहता है—इस तथ्य की पुष्टि करने लगे हैं। पास्ट लाइफ रिग्रेशन के नाम से पुनर्जन्म के तथ्य को पुष्ट करने वाली एक पूरी विधा पर मनोवैज्ञानिक अनुसंधान चल रहे हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार—जन्म लेने, जीवन धारण करने का एक ही मौलिक प्रयोजन है—जीवन और सृष्टि में भागवत सौंदर्य की परिपूर्ण अभिव्यक्ति। इस हेतु व्यक्तिगत आत्मा विभिन्न रूपों में विकसित होती है, जब तक कि वह मानव तक नहीं पहुँच पाती, जो कि और भी उच्चतर स्तरों के लिए एक सीढ़ी मात्र है। निम्न से उच्च तक, पशु से मानव तक प्रगति सुनिश्चित है। जीवात्मा मानव शरीर में आकर भी बार-बार इसे धारण करती रहती है। इस क्रम में शरीर भले ही मानवाकार बना रहता है, पर हर बार भगवान के सौंदर्य की अभिव्यक्ति बढ़ती जाती है। यह विकास की सामान्य प्रक्रिया है, जो महामानव, देवमानव, ऋषि के क्रम में उत्तरोत्तर गतिशील रहती है।

मानव सामान्यतया अगला जन्म मानव के रूप में ही प्राप्त करता है। मानवीय चेतना इतनी उत्कृष्ट कोटि की है कि उसका निचली योनियों में गिरना कतिपय कठिन है। तब भी यदि कोई मनुष्य वह मानवीय सद्गुणों से निरंतर दूर ही हटता जाए, मानवीयता की संज्ञा से जुड़े भाव स्पंदनों को कुचलता ही रहे और पाशविक प्रवृत्तियों को ही अपनाकर उन्हीं को अपना साध्य, इष्ट, लक्ष्य समझने लगे तो फिर उसका नर-पशुओं, नर-कीटकों की निम्नतर योनियों में जाना तय हो जाता है, परंतु इस कोटि का पतन बहुत थोड़े ही लोग प्राप्त कर पाते हैं।

अधिकांश लोग अपनी शक्ति भर ऊपर उठने का ही प्रयास करते हैं, क्योंकि आनंद प्राप्त करने की प्रत्येक जीवात्मा की मूलभूत इच्छा होती है और मनुष्ययोनि में आने तक जीवात्मा इतनी विकसित तो हो ही चुकी होती है कि वह आनंद के नाम पर नारकीय दु:खों को ही अपनाने में न जुट जाए। फिर जब कभी वह मोह और वासना के आवेग में उधर अधिक मुड़ता भी है तो उसका मानवीय अंत:करण उसे कचोटने लगता है, वह छटपटाने लगता है और तब तक सामान्य स्थिति में नहीं आ पाता, जब तक प्रायश्चित और भूल-सुधार कर वह पुन: सामान्य एवं सहज मानवीय स्तर को न प्राप्त कर लेता।

इस तरह आत्मसत्ता के संकल्प एवं कर्म ही प्रत्येक मनुष्य की प्रगति या पतन के आधार बनते हैं। मनुष्य की इच्छा ही कर्म का स्वरूप गढ़ती है।

कर्म और विषय-चिंतन संस्कारों का रूप ले लेते हैं। कर्मफल एवं संस्कार—प्रारब्ध का निर्माण करते हैं, प्रारब्ध जन्मांतर के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। इन सबके मूल में इच्छा ही है।

गीताकार के शब्दों में भी मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस-उस को प्राप्त होता हुआ, अंतिम गति को प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अंतकाल में भी प्राय: इसी का स्मरण होता है। इस प्रकार इच्छा का स्वरूप और कर्म के संस्कार अगले जन्म में विकासक्रम के मानक के रूप में उभरते हैं।

इस तरह पुनर्जन्म एक शाश्वत व्यक्तित्व के सतत नए-नए रूप धारण करने अथवा लंबे समय तक जिंदा रहने वाला उपकरण न होकर प्रकृति में आध्यात्मिक विकास का साधन है, भगवान के मंजुल सौंदर्य को नए-नए ढंग से अभिव्यक्त करने का माध्यम है।

अपनी अभिव्यक्ति हेतु जन्म-जन्मांतर की कोशिशों के बाद जीवात्मा विकास की पूर्णता, परम एकत्व-मोक्ष के रूप में प्राप्त करती है। गीताकार के शब्दों में अनेक जन्मों से अंत:करण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ योगी परम गति को प्राप्त होता है। वैदिक दर्शन में इसे मानव जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। मुक्ति वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य सब वासनाओं को त्यागकर पूर्णकाम हो जाता है और सब प्रकार के दु:ख एवं कष्टों से दूर विशुद्ध दिव्य आनंद के महासमुद्र में हिलोरें लेने लगता है। इस तरह जीवन और मृत्यु शाश्वत जीवन-प्रवाह के आवश्यक सोपान भर हैं, जो जीवात्मा को परम लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। ❑

रूसी साहित्य के शिखर मैक्सिम गोर्की को आज हर कोई जानता है, पर बहुत कम व्यक्ति इस बात से परिचित हैं कि उनके जीवन के प्रारंभिक दिन बहुत संघर्षमय रहे। आर्थिक रूप से विपन्न गोर्की को बहुत वर्षों तक नौकर के रूप में कार्य करना पड़ा और अपने साहित्य प्रेम के कारण अपने मालिकों के दुर्व्यवहार को भी सहन करना पड़ा। अपनी आर्थिक स्थिति से तंग आकर एक दिन उन्होंने स्वयं को गोली मार ली, पर गोली दिल में न लगकर फेफड़ों में लगी और उनका जीवन बच गया।

इन्हीं कष्टमय दिनों में उन्होंने अपनी पहली पुस्तक लिखी और उसके प्रकाशित होते ही वे एक सुविख्यात लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। बाद में अपने कठिन दिनों को याद करते हुए गोर्की ने एक बार कहा—"जब तक आदमी काम को कर्त्तव्य समझकर करता है, उसका जीवन गुलाम का होता है, पर जिस दिन वो उस काम को अपनाकर करता है, उस दिन उसके जीवन में सुख और आनंद की शुरुआत होती है।" जीवन में सुखी रहने का यह छोटा-सा सूत्र कई मायनों में बेशकीमती है।

भारतीय पर्व-उत्सव

भारत के प्रमुख त्योहारों में दीपावली का विशेष स्थान है। इस पर्व में माँ लक्ष्मी का पूजन प्राचीनकाल से प्रचलित है। दीपावली आलोक पर्व है। सभी उम्र के लोग बड़े आनंद-उल्लास के साथ इसे मनाते हैं।

इसका आगमन निकट आते ही घरों की सफाई का कार्य शुरू हो जाता है। घरों के अतिरिक्त कुआँ, तालाब, मंदिर, चौराहा आदि सार्वजनिक स्थल भी दीपों के प्रकाश से जगमगा उठते हैं।

कृषिप्रधान भारत में आज से हजारों वर्ष पूर्व इस उत्सव का प्रचलन ऋतुपर्व के रूप में हुआ था। इस समय तक फसल पककर घरों में आ जाती है और यह उल्लास दीपावली के रूप में फूट पड़ता है।

कालक्रमानुसार इस पर्व के साथ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ जुड़ती गईं। स्कंदपुराण, पद्मपुराण और भविष्यपुराण में इसके संबंध में विभिन्न कथाएँ हैं।

दीपावली पर लक्ष्मीपूजन क्यों होता है—इसका उत्तर हमें प्राचीन ग्रंथ 'सनत्कुमार संहिता' की उस कथा से मिलता है, जिसमें दानवराज बलि के कारागार में बंदिनी देवी लक्ष्मी को वामन अवतार रूपधारी भगवान विष्णु द्वारा मुक्त कराने का उल्लेख है।

पुराणों में इस रात्रि को 'महारात्रि' कहा गया है और यह मंत्र-तंत्र विद्या की सिद्धि के लिए अद्वितीय मानी गई है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त अन्य प्राचीन भारतीय धर्मों के साहित्य में भी दीपावली की पृष्ठभूमि अलग-अलग रूपों में मिलती है। इस पर्व से जुड़े हुए अन्य प्रमुख पर्व हैं—धनवंतरि त्रयोदशी (धनतेरस), नरक चतुर्दशी, गोवर्धन पूजा तथा भ्रातृ द्वितीया (भैया दूज)।

भारतीय पर्व-परिवेश स्वच्छता की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। असंख्य दीपों से उत्पन्न होने वाला प्रकाश, वर्षा ऋतु में पैदा होने वाले कीटाणुओं को नष्ट करता है।

घरों की सफाई के लिए चूना, नीलाथोथा आदि कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग सील, दुर्गंध और अस्वास्थ्यकर वातावरण को दूर करता है। तेल का धुआँ, जो दीपकों से निकलता है साँस के जरिए भीतर पहुँचकर मस्तिष्क को पुष्ट करने के साथ ही संक्रामक कृमियों का संहार करता है।

भारतीय अर्थप्रणाली के अनुसार यह आर्थिक वर्ष का प्रथम दिन है। बहीखातों को बदलकर हिंदू लोग उनका पूजन करके वर्षभर के आय-व्यय का निरीक्षण करते हैं और भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हैं।

गोवर्धन पूजा हमें संगठन शक्ति के महत्त्व का बोध कराती है। भगवान श्रीकृष्ण ने इंद्र (वर्षा के जल) की कृपा पर आश्रित न रहकर, अन्य साधनों का प्रयोग करने के लिए साहस और उद्यम की प्रेरणा देते हुए, ग्वालों को संगठित करके गोवर्धन उठाया (उसे बाँध के रूप में प्रयुक्त किया) और ब्रज भूमि को समृद्ध किया।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया को भ्रातृ द्वितीया (भैया दूज) का पर्व मनाते हैं। यह पर्व भाई-बहन के परिवारों को संयुक्त रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उनके अटूट प्रेम को सुदृढ़ करता है और हिंदू परिवारों के संगठन को भी बहुत बल देता है। ❑

गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं

विगत अंक में आपने पढ़ा कि शांतिकुंज के विस्तार और परिवर्तन ने गति पकड़ ली थी। सन् 1973 के दौर में मुख्य भवन जिसमें परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी रहा करते थे, शांतिकुंज का परिसर लगभग उतने तक ही सीमित था, किंतु सन् 1979 आते-आते मुख्य भवन से लगी जमीन पर भी गायत्री नगर का निर्माण आरंभ हो गया। पूज्य गुरुदेव की संकल्पना इस समूचे क्षेत्र को गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित करने की थी। यही कारण था कि पूज्यवर अपनी व्यस्ततम दिनचर्या में से भी समय निकालकर निर्माणकार्यों के अवलोकन हेतु समय-समय पर न केवल उपस्थित होते, वरन आवश्यक दिशा-निर्देश भी देते। शांतिकुंज में पूज्य गुरुदेव के प्रत्यक्ष निर्देशन में तैयार हो रही महत्त्वपूर्ण स्थापनाओं में देवात्मा हिमालय मंदिर, सप्तर्षि-क्षेत्र एवं गायत्री माता मंदिर शामिल थे। शांतिकुंज को युगतीर्थ के रूप में स्थापित करने का दायित्व ऋषियुग्म ने स्वयं अपने कंधों पर लिया व अपनी तप-ऊर्जा का एक बड़ा अंश इस हेतु लगाकर इस कार्य को संपन्न किया, जिसे आने वाले समय में अनेकों के कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करना था। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण .....

व्यसन के लिए द्वार बंद

तीर्थ की तेजस्विता प्रकट करने वाले प्रयोग इन सबसे अलग थे। उनके बारे में सिर्फ उन्हें ही पता चलता, जिन्हें गुरुदेव की सूक्ष्म या मूक अनुमति मिलती।

इस तरह के प्रयोगों में कुछ संध्या समय संपन्न होते। तब चर्चा, परामर्श या आश्रम के परिवारों से संवाद का आयोजन नहीं होता। गुरुदेव तब संध्या समय अपने कक्ष के बरामदे में चहल कदमी करते अथवा साधनाकक्ष में होते या अपने आसन पर अकेले ही कुछ सोच-विचार या संवाद कर रहे होते थे।

किसी कार्यकर्त्ता ने उस दिन देखा सूरज अस्ताचल की ओर जा रहा था। उसकी सातों रश्मियाँ अपने उन्हीं रंग के घोड़ों का रंग लिए सविता देवता को वाहन में बिठाए दौड़ी जा रही थीं। यह उस शाम का स्थूलदृश्य था।

वे कार्यकर्त्ता कोई जरूरी सूचना देने के लिए गुरुदेव के कक्ष की सीढ़ियाँ छलाँगते हुए चले जा रहे थे। कक्ष के द्वार खुले थे। बिना रुके वे भीतर चले गए। बाहर बरामदे में खड़े गुरुदेव अकेले ही कुछ कर रहे थे। उनके वाक्य स्पष्ट सुनाई दे रहे थे, लेकिन वे किसके प्रति कहे जा रहे हैं, कुछ समझ नहीं आ रहा था।

स्पष्ट लग रहा था कि वह व्यक्ति अथवा सत्ता अदृश्य या सूक्ष्मशरीरधारी है, लेकिन सूक्ष्म शरीरधारी है तो फिर बैखरी वाणी में बोलने की क्या आवश्यकता है? उन कार्यकर्त्ता के मन में संदेह उठा। जैसे ही संदेह उभरा कार्यकर्त्ता को गुरुदेव के सामने उपस्थित शक्ति या प्रवृत्ति की रेखाएँ दिखाई देने लगीं। रेखाएँ कुछ ही पलों में स्पष्ट हुईं और आकृति में बदल गईं। एक मलीन, कृशकाय और गंदे, पुराने वस्त्र पहने उस आकृति की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

हाथ जोड़े खड़े उस आकृति ने कहा—"मैं आपके निर्देशों का पूरी तरह पालन करूँगा गुरुदेव। इस परिसर में रहने वाले आपके किसी अनुचर की छाया पर भी पैर नहीं रखूँगा।" "न सिर्फ इस

परिसर में, बल्कि यहाँ रहकर गए यात्री को बाहर जाने के बाद भी तंग मत करना। तुम्हारे लिए इतना प्रतिबंध ही पर्याप्त है।''—गुरुदेव ने उस सूक्ष्मकाया को निर्देश दिया और जाने का इशारा करते हुए हाथ उठा दिया।

वह आकृति तत्क्षण तिरोहित हो गई। अब गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता की ओर देखा जो इस दृश्य के साक्षी बने हुए थे। साक्षी बनने के साथ वे यह भी समझ रहे थे कि गुरुदेव को उनके आने का भान नहीं हुआ है। गुरुदेव ने उन कार्यकर्त्ता को इंगित करते हुए कहा—''इस घटना के बारे में कहीं चर्चा नहीं करनी है। अपने जीते जी तो कदापि नहीं। जानते हो क्यों? इस आसुरी प्रवृत्ति को हमने कीलित कर दिया है। इस तीर्थ में यह प्रवेश नहीं कर पाएगी।''

वे कार्यकर्त्ता गुरुदेव की बात को सुनते रहे। कुछ बोले नहीं। गुरुदेव ने कहा—''इस असुर का नाम है—व्यसन। इस तीर्थ-क्षेत्र में आने वाले किसी व्यक्ति को यह नहीं सताएगा। जो यहाँ बे-मन से आएँगे और इससे वास्ता रखेंगे, उन पर भी यह हमला नहीं कर सकेगा। चोर की तरह ही उनके दर-दीवार में घुसपैठ करेगा।''

जिन कार्यकर्त्ता ने यह दृश्य देखा, वे अब नहीं हैं। कोई वर्षभर पहले उन्होंने लेखकद्वय को इस शर्त पर यह घटना बताई थी कि इसे केवल गुरुदेव के जीवन-वृतांत में ही सम्मिलित किया जाए। जीते जी इस घटना के उल्लेख का हवाला दिया तो कहने लगे गुरुदेव ने मना किया था, पर अब मैं जीवित हूँ ही कहाँ। उनकी कृपा से वर्षों पहले जीवन्मुक्त हो गया।

घटना की प्रामाणिकता के बारे में उनसे पूछा तो कहने लगे—''प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता? गायत्री तीर्थ में प्रतिदिन हजारों लोग आते हैं। मैंने किसी भी व्यक्ति को यहाँ कोई व्यसन करते नहीं देखा। उस असुर ने चोरी छिपे किसी को अपना शिकार बनाया हो तो पता नहीं। मुझे ही क्या किसी को भी पता नहीं।''

उन परिजन से पूछा—''गुरुदेव ने जिस तरह व्यसन को कीलित किया, उसी तरह और दोषों को भी प्रतिबंधित किया होगा।'' उनका उत्तर था—''निश्चित ही किया होगा, पर मुझे इस बारे में पता नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ यह सिद्ध क्षेत्र है, यहाँ महाकाल की इच्छा के विपरीत कोई कुछ नहीं कर सकेगा। जो देखा और अनुभव किया, उसे गायत्री चेतना की अभ्यर्थना में प्रस्तुत कर दिया।''

महाकाल का नीड़

गायत्री तीर्थ के मर्म देवता और ऋषि के बारे में जानने की किसी को उत्सुकता नहीं हुई। कारण कि इस संबंध में पहले ही सब कुछ स्पष्ट है। गुरुदेव द्वारा करीब पचासी वर्ष पहले ही प्रज्वलित अखंड दीपक, स्वयं उनका और माताजी का कक्ष, उन दिव्य आत्माओं की समाधियाँ और गुरुदेव के आश्वासन को दोहराएँ तो तीर्थ का कण-कण पारस है। उनके आराधकों, उपासकों के लिए तीर्थ के देवता स्वयं गुरुदेव और वंदनीया माताजी हैं। गुरुदेव कहा करते थे—''यह तीर्थ महाकाल का घोंसला है। कोई अवधि निश्चित नहीं है, लेकिन धरा-धाम के रहने तक यह क्षेत्र महाकाल का निवास, उनकी लीला का केंद्र रहेगा।''

कुछ साधकों को अनुभव है कि सविता देवता ही महाकाल हैं या महाकाल ही सविता देव। दिवस के अवसान और नए दिवस के उदय में उन्हीं की उपस्थिति कारण बनती है। गायत्री तीर्थ की प्राण-प्रतिष्ठा किसी एक दिन या मुहूर्त में नहीं हुई। ज्यादा विस्तार में जाए बिना गंगा-यमुना और सरयू के तट पर मचान बनाकर तप करने वाले देवरहा बाबा का एक प्रसंग शायद पर्याप्त हो। देवरहा बाबा के बारे में प्रसिद्ध है कि उनकी आयु सैकड़ों वर्ष थी।

कहते हैं कि प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें सन् 1930-32 में उसी वय और अवस्था का देखा था, जिस अवस्था में उनके पितामह ने देखा था। उनकी आयु को लेकर कई तरह की मान्यताएँ हैं, लेकिन यह तथ्य है कि गुरुदेव के शरीर छोड़ने के ठीक एक पखवाड़े बाद उन्होंने भी इहलीला का संवरण कर लिया।

वे गुरुदेव को अपना अभिन्न अंग मानते थे और कहते भी थे कि पिछले किसी जन्म में दोनों ने एक ही क्षेत्र में तप किया था। सन् 1983 में प्रयाग अर्द्धकुंभ के समय उन्होंने पुरी के शंकराचार्य के पास संदेश भिजवाया था कि कभी गायत्री तीर्थ भी होकर आओ। आदि शंकर होते तो वहीं अपना प्रमुख मठ बनाते।

यह संदेश पुरी के शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेव तीर्थ द्वारा गायत्री परिवार की आलोचना के संदर्भ में भिजवाया था। याद रहे चारों प्रमुख शंकराचार्य गुरुदेव की चिंतन धारा का विरोध करते रहे हैं। सन् 1981-82 में हरिद्वार में गायत्री तीर्थ की स्थापना हो गई तो उन्होंने विरोध को नए तेवर दिए। पुरी के शंकराचार्य तो यहाँ तक कहने लगे थे कि भगवती गँगा की तरह गायत्री भी इस लोक से चली गई है। भला यह कोई बात हुई कि उसके नाम से भी तीर्थ बनाया जाए।

शंकराचार्य ने देवरहा बाबा को उलाहना भिजवाया कि वे शास्त्र-मर्यादा का विचार किए बिना ही आचार्य जी (गुरुदेव) की प्रशंसा करते रहते हैं। देवरहा बाबा ने तब अपने एक सहयोगी से पत्र लिखवाया था कि गायत्री तीर्थ के रूप में गुरुदेव ने परीक्षित जैसा ही काम किया है।

वहाँ जाकर किसी भी व्यक्ति के मन में झूठ, छल, कपट भर और लोभ-लालच से लड़ने की शक्ति आ जाती है। वह गुरुदेव के संसर्ग में इन बुराइयों को जीत भी सकता है। तीर्थ की यह क्षमता लगातार काम करेगी। गायत्री तीर्थ के पुण्य प्रताप की अवहेलना करने के बजाय शंकराचार्य महाराज को उसका आदर करना चाहिए। सन् 1983 के प्रयाग अर्द्धकुंभ में एक धर्मसंसद ने तो रुचि नहीं ली, लेकिन नए संन्यासियों ने उत्साह से हिस्सा लिया। चीवर और उत्तरीय पहने इन संन्यासियों ने नए युग के मठों और आश्रमों के संतों से दीक्षा ली थी। संन्यासी प्रायः शिवानंद मठ, कैलास आश्रम, चिन्मय मिशन, रामकृष्ण आश्रम से थे। वे अद्वैत मिशन और कांची कामकोटि मठ से जुड़े थे।

इन मठों में रामकृष्ण आश्रम और कांची मठ की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। धर्मसंसद की अध्यक्षता कांची मठ से आए ब्रह्मचारी स्वामी अद्वैतानंद सरस्वती ने की। निर्मल योगी, अनामय स्वामी और स्वामी निरंजनानंद ने पहल की कि भारतीय धर्म परंपरा को उदार बनाया जाए। यों गायत्री मंत्र की उपासना का अधिकार जाति वर्ग और लिंगभेद का विचार किए बिना हर किसी को देने का प्रतिपादन आर्यसमाज करीब सौ साल पहले ही कर चुका था। उस प्रवर्तन का पुराणपंथी धर्माचार्यों ने घोर विरोध किया और आर्यसमाज को भारतीय धर्मपरंपरा की मूलधारा से कुछ अलग ही रखा।

प्रयाग में एकत्रित हुए इन संन्यासियों ने आचार्यश्री के कार्य में सहयोग देने या भागीदारी करने का संकल्प लिया। उस समय तक गायत्री तीर्थ आकार ले चुका था। तीर्थ सेवन के उद्देश्य से लोग आने लगे थे। संस्कार, कथा, स्वाध्याय, अनुष्ठान और साधना, उपासना का क्रम चलने लगा था। नए युग के आह्वान और अभिवादन में जुटे सृजनकर्मियों की अच्छी संख्या अपने पूरे परिवार के साथ आकर यहाँ बस गई थी।

जीवन-साधना, कल्प-साधना, रामायण, भागवत आदि शिविरों की शृंखला आरंभ हुई और अनवरत चलने लगी। जीवन-साधना सत्र नौ दिन के होते। युवा पीढ़ी इन साधना सत्रों की ओर

ज्यादा आकर्षित हुई। महीने में तीन दिन पहली, ग्यारहवीं और इक्कीसवीं तारीख को शुरू होने वाले इन सत्रों में गायत्री पुरश्चरण का लघु अनुष्ठान कराया जाता। प्रतिदिन गुरुदेव शिविरार्थियों को संबोधित करते। उद्‌बोधन में जीवन की सामान्य समस्याओं का समाधान सुझाया जाता।

इन समस्याओं का सामना प्राय: हर किसी को करना पड़ता है। समाधान के लिए सुझाए या किए जाने वाले उपाय आमतौर पर अनगढ़ और तात्कालिक होते हैं, जिनके परिणाम शुभ तो नहीं ही होते हैं। गुरुदेव के उद्‌बोधनों में मिलने वाला मार्गदर्शन नई पीढ़ी को इतना भाया कि प्रवचनों के समय वे नोटबुक लेकर बैठते और महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को लिखते जाते। प्रवचनों के अलावा साधकों को गुरुदेव से संपर्क, परामर्श का अवसर भी मिलता।

वे व्यक्तिगत रूप से, अलग एकांत में गुरुदेव से मिलते और उनके सामने अपने मन की वे गुत्थियाँ खोलते, जिन्हें किसी के सामने कह नहीं पाते। इन सत्रों में साधकों को अक्सर अनुभव हुआ कि एक ऐसा व्यक्तित्व उन्हें मार्गदर्शक सत्ता के रूप में मिल रहा है, जो गुरु कम मित्र, साथी और सखा-सहचर ज्यादा है। पग-पग पर उसकी सहायता मिल रही है।

कल्प साधना सत्र तपश्चर्या प्रधान थे। प्राय: एक माह के इन सत्रों में साधना, शिक्षण और स्वाध्याय के अलावा आहार, समय और दिनचर्या में संयम, अनुशासन के अभ्यास भी करना होते थे। संयम, अनुशासन का स्वरूप साधकों की निजी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार तय किया जाता।

इन शिविरों में अनुभवी, प्रौढ़ और जीवन तथा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय परिजन साधक आ रहे थे। जाहिर है इन साधकों के भी अपने अलग-अलग अनुभव थे, अहोभाव और धन्यता के बोध से भरे इन अनुभवों के विवरण कई ग्रंथों में समेटे जाने लायक हैं। साधकों का मानना है कि इन्हें बाँटना नहीं चाहिए। बाँटना चाहें तो भी नहीं बाँट सकेंगे। 'गूँगे केरि सरकरा खाई के मुसकाय' कल्प साधना सत्र में भाग ले चुके परिजन भगवती चरण सिंह का कहना था। उनसे इतना भर कहा था कि कल्प साधना का कोई अनुभव या प्रभाव बता सकें तो उसे अन्य परिजनों तक पहुँचाएँ।

इस आशय का कबीर का पद दोहराते हुए उन्होंने कहा कि वह अनुभव तो गूँगे के गुड़ की तरह है, जिसे चखा तो जा सकता है, पर कहकर व्यक्त नहीं किया जा सकता। चेहरे पर छाया रहने वाला उल्लास ही उसकी झलक देगा। विभिन्न शिविरों में साधकों की संख्या बढ़ने लगी। साधना, अनुष्ठान और परिष्कार सत्रों के अलावा लोकसेवा के लिए आने वाले कार्यकर्त्ताओं की संख्या भी बढ़ने लगी। गायत्री तीर्थ आकार लेने लगा। संस्कार, कथा, स्वाध्याय, अनुष्ठान और साधना-उपासना का क्रम चलने लगा।

नए युग के आह्वान और अभिवादन में जुटे सृजनकर्मियों की अच्छी संख्या अपने परिवार के साथ यहाँ आकर बस गई थी। उन्हें तैयार करने और तराशने के लिए गुरुदेव प्रतिदिन अलग-अलग वर्गों में उन्हें बुलाते और कार्यकर्त्ताओं को सौंपे गए दायित्वों की बारीकियाँ समझाते। परामर्श-प्रशिक्षण के इस क्रम के साथ गोष्ठियों का भी सिलसिला चल पड़ा था।

गुरुदेव इन गोष्ठियों में शांतिकुंज के कार्यकर्त्ताओं को, उनके परिवारों को एक साथ बुलाते। उन्हें लोकसेवी कार्यकर्त्ताओं की धर्म-मर्यादा और व्यवहार सूत्रों के बारे में बताते। गुरुदेव इन गोष्ठियों के लिए जिस तरह समय देते थे, उससे लगता था कि गायत्री नगर के कार्यकर्त्ताओं की टीम को संस्कारित करने का काम उनकी पहली प्राथमिकताओं में शामिल हो रहा है। (क्रमश:)

सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव

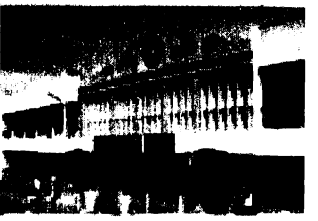

वर्तमान समय में कैंसर लोगों में बढ़ती एक गंभीर समस्या है। कैंसर का नाम आते ही इसकी भयावहता और डर तथा रोगी को होने वाले कष्ट से सभी परिचित हैं। सब जानते हैं कि यह एक गंभीर और घातक बीमारी है। एक बार यदि कोई इसकी चपेट में आ जाए तो फिर इससे उबरना बहुत मुश्किल हो जाता है।

यद्यपि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कैंसर के उपचार एवं रोक-थाम की अनेक तकनीकें मौजूद हैं और प्रभावशाली भी हैं, परंतु इस रोग में रोगी को बीमारी के अतिरिक्त और भी अन्य समस्याओं से जूझना होता है। जैसे—तनाव, चिंता, अवसाद, क्रोध, निराशा।

इसके साथ ही चिकित्सा के दुष्प्रभाव भी दूसरी कई जटिल समस्याओं को उत्पन्न कर जीवन को असामान्य कर देते हैं। रेडियोथेरेपी, कीमोथेरेपी, सर्जरी—यह सब उपचार विधियाँ कैंसर के उपचार में प्रयुक्त की जाती हैं। इनसे रोग का उपचार तो होता है, परंतु रोग के साथ उत्पन्न हुई अन्य मानसिक व भावनात्मक समस्याएँ और जीवनीशक्ति पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का समाधान इन प्रचलित उपचार तकनीकों में नहीं है।

ऐसे में कैंसर की समस्या ठीक होने पर भी रोगी के जीवन में दूसरी जटिलताएँ बनी रहती हैं। ऐसे में यह आवश्यकता है कि कैंसर के उपचार के साथ-साथ ही इससे संबंधित अन्य समस्याओं एवं परेशानियों के प्रबंधन एवं समाधान की प्रक्रिया भी अपनाई जाए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत वर्ष—2017 में कैंसर मरीजों के उपचार एवं स्वास्थ्य प्रबंधन में सहयोगी तकनीक की खोज के रूप में एक विशिष्ट शोध अध्ययन संपन्न किया गया है। इस शोध में हिप्नोथेरेपी के माध्यम से कैंसर रोगी की शारीरिक, भावनात्मक और व्यावहारिक समस्याओं को दूर करने में सहयोगी प्रभावी तकनीक को खोजने का प्रयास किया गया है।

शोधार्थी विकास कुमार शर्मा द्वारा किया गया यह महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण, निर्देशन तथा डॉ. राकेश कुमार व डॉ. गौरव गुप्ता के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—**'इफेक्ट ऑफ हिप्नोथेरेपी ऑन मेलिग्नेंसी एंड एसोसियेटेड कन्डिशंस।'**

वैज्ञानिक प्रयोग एवं विश्लेषणात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन की प्रयोगात्मक प्रक्रिया को पूरा करने के लिए शोधार्थी द्वारा कन्वेनियन्स सैंपलिंग मैथड द्वारा जवाहरलाल नेहरू कैंसर अस्पताल एवं अनुसंधान केंद्र (JNCHRC), भोपाल, मध्य प्रदेश से 57 लोगों का चयन किया गया।

ये नियमित रूप से कैंसर रोग की चिकित्सा हेतु अस्पताल आ रहे थे तथा सभी की उम्र अठारह वर्ष से अधिक थी। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनितों का शोध में सम्मिलित परीक्षण उपकरणों

द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया वे हैं—

(1) डिजिटल केलिपर,

(2) न्यूमेरिकल रेटिंग स्केल (NRS),

(3) प्रोफाइल ऑफ मूड स्टेट्स स्टैंडर्ड (POMS) तथा

(4) इन्फ्रारेड थर्मामीटर (नान-कान्टेक्ट थर्मामीटर)।

परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा प्रयोगात्मक समूह को हिप्नोथेरेपी चिकित्सा प्रदान की गई। प्रयोग की कुल अवधि में प्रत्येक मरीज को पंद्रह सत्रों में हिप्नोथेरेपी प्रदान की गई। एक सप्ताह में इस थेरेपी के प्रतिव्यक्ति चार सत्र आयोजित किए गए तथा थेरेपी प्रदान करने की अवधि एक घंटे रखी गई। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति ही सभी चयनित मरीजों का पुनः शोध उपकरणों द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि हिप्नोथेरेपी चिकित्सा का कैंसर मरीज के ट्यूमर के आकार, दरद, चिंता स्तर, अवसाद, थकान, भ्रम और निराशा स्तर पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। कैंसर रोग एवं इससे संबंधित अन्य शारीरिक, भावनात्मक एवं व्यवहार संबंधी समस्याओं के प्रबंधन में हिप्नोथेरेपी का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का निष्कर्ष यह स्पष्ट संकेत देता है कि कैंसर रोग के प्रबंधन में हिप्नोथेरेपी एक प्रभावी तकनीक है। साइको-ओन्कोलॉजी मॉडल कैंसर के उपचार का समग्र एवं प्रभावी तरीका कहा जा सकता है। शोध अध्ययन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू शोधार्थी द्वारा चयनित मनोचिकित्सा की एक विशिष्ट विधि हिप्नोथेरेपी है।

यह एक ऐसी चिकित्सापद्धति है, जो रोगी के संपूर्ण जीवन में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न करती है जो सकारात्मक विचार, अभिवृत्ति, व्यवहार और भावनाओं के रूप में दिखाई देता है। हिप्नोथेरेपी के रूप में मनोचिकित्सा की प्रक्रिया को इस अध्ययन में क्रमशः सात सोपानों में विभाजित कर प्रयुक्त किया गया है।

हिप्नोथेरेपी का प्रथम सोपान है रोगी को इस विशिष्ट मनोचिकित्सा विधि से संबंधित महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक जानकारी प्रदान करना तथा विधि के प्रति उनमें सकारात्मकता एवं विश्वसनीयता को सुनिश्चित करना है।

दूसरे सोपान हिप्नोटिक इन्डक्शन के अंतर्गत रोगी के मन को कृत्रिम निद्रावस्था की स्थिति में ले जाने हेतु प्रेरित किया जाता है। यह कार्य कुशल एवं प्रशिक्षित विशेषज्ञ के द्वारा ही किया जाता है। कृत्रिम निद्रा के लिए प्रयोगकर्त्ता प्रायः नेत्रों की स्थिरता या हाथों को उत्तोलित करने की तकनीक अपनाते हैं तथा हिप्नोथेरेपी के लिए निर्धारित निर्देशों का पालन करते हैं।

तीसरा सोपान 'डीपनिंग ऑफ हिप्नोसिस' का है, जिसमें श्वसन प्रक्रिया का नियंत्रण एवं सजगता उत्पन्न कर आंतरिक विश्रांति की भावना को गहन किया जाता है। रोगी की मानसिक सजगता को उस स्तर पर पहुँचाया जाता है, जहाँ गहन विश्रांति में होते हुए भी रोगी की आंतरिक चेतना प्रयोगकर्त्ता के निर्देशों को ग्रहण कर सके।

चतुर्थ सोपान में जब प्रयोगकर्त्ता यह सुनिश्चित कर लेता है कि रोगी पूर्णरूपेण हिप्नोसिस की अवस्था में पहुँच गया है अर्थात बाह्य रूप से तो वह गहरी विश्रांति में होता है, परंतु उसका अवचेतन मन दिए गए निर्देशों का पालन करता रहता है तो ऐसी अवस्था में ही प्रयोगकर्त्ता अपनी उपचारात्मक प्रक्रिया को संपन्न कर पाता है।

हिप्नोथेरेपी के पंचम सोपान में रोगी के आत्मप्रभावकारिता स्तर को बढ़ाया जाता है, ताकि उसके आंतरिक व्यक्तित्व में रुग्णावस्था में उत्पन्न नकारात्मक विचारों-भावनाओं को नियंत्रित कर आत्मविश्वास व अन्य विधेयात्मक भावों-विचारों के स्तर को बढ़ाया जा सके।

मनोविश्लेषण के सिद्धांत के अनुसार उक्त प्रक्रिया को इगो-स्ट्रेन्थिंग कहा जाता है। चिकित्सा के अगले सोपान में मरीज को हिप्नोसिस की अवस्था से बाहर निकलने के पश्चात की अवस्था एवं अनुभवों के विषय में आवश्यक परामर्श प्रदान किया जाता है।

इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि रोगी के मन-मस्तिष्क पर हिप्नोथेरेपी का किसी तरह से कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े अथवा हिप्नोसिस से बाहर आने पर रोगी यदि किसी तरह की असहजता का अनुभव करता है तो ऐसी अवस्था को शीघ्र ही नियंत्रित किया जा सके।

चिकित्सा के अंतिम चरण में रोगी की चेतना को पूर्व की भाँति सामान्य अवस्था में लाया जाता है। इस चरण के साथ ही हिप्नोथेरेपी का सत्र संपूर्ण हो जाता है। प्रयोगकर्त्ता प्रत्येक सत्र को इन्हीं उक्त सात सोपानों के अनुसार संपन्न कराता है और इस चिकित्सा से संबंधित सभी अनुशासनों एवं निर्देशों का पालन करता है, ताकि चिकित्सा-उपचार की प्रक्रिया प्रभावकारी सिद्ध हो। इस शोध अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कैंसर जैसी समस्या से लड़ने के लिए औषधि, सर्जरी आदि के साथ हिप्नोथेरेपी को संयुक्त कर एक समग्र एवं कारगर चिकित्सा प्रणाली को विकसित किया जा सकता है। ❑

एक महात्मा जंगल में परमात्मा का भजन किया करते थे। उनकी कुटिया के समीप एक दुष्ट व्यक्ति रहा करता था, जो उन्हें अकारण ही परेशान करता था। राजा को इस घटना का पता चला तो उन्होंने महात्मा जी को राजदरबार बुलवाया और कहलवाया—''आप मेरे दरबार में आइए, मैं इस देश का राजा हूँ और आपके साथ न्याय करूँगा।'' महात्मा जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया और मुँह पर कोयला मलकर राजदरबार पहुँचे। राजा ने महात्मा जी से इस तरह पहुँचने का कारण पूछा। महात्मा जी ने उत्तर दिया—''राजन्! मैं प्रभु के राज्य का निवासी हूँ। उनके न्याय पर विश्वास करके जीवनयापन करता हूँ। मृत्यूपरांत जब परमात्मा मुझसे पूछेंगे कि क्या मुझे उनके न्याय पर विश्वास नहीं था, जो मैं आपके पास न्याय कराने पहुँचा तो मेरा मुँह काला होगा। इसलिए मैंने पहले ही चेहरे पर काला रंग लगा लिया, ताकि वहाँ लज्जित होने से बच जाऊँ।'' राजा महात्मा के ईश्वरीय विधान पर विश्वास से अत्यधिक प्रभावित हुआ। जिसे परमात्मा के न्याय पर भरोसा हो, उसे अन्यत्र प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती।

अर्थव्यवस्था का आधार है गोधन

सूर्यवंश के प्रतापी राजा दिलीप गोभक्त थे। उन्हें अपनी असीम निष्ठा और गोभक्ति के प्रसादस्वरूप रघु के रूप में संतति प्राप्त हुई थी। रघु के नाम से ही रघुकुल की पहचान हुई। भारतीय मानस पर रघुवंश की अमिट छाप अंकित है। रघुवंश भारत में प्रतिज्ञापालन का मापदंड बना—'रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्रान जाए बरु बचन न जाई।'

आज जब देश की उर्वर धरती बाँझ हो चली है, प्रदूषण जमीन से लेकर हवा और पानी को अपनी गिरफ्त में लेता जा रहा है—ऐसे में कामधेनु गोपुष्टि महायज्ञ, गोपालन और गो संरक्षण के प्रतीक के रूप में आस्था का केंद्र बनता जा रहा है। गोवंश के संवर्द्धन का प्रयास भी अनेकों जगह किया जा रहा है। गोसंरक्षण पदयात्राओं की अनुगूँज पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण के जनपदीय अंचलों में सुनाई दे रही है।

गंगा राष्ट्रीय धरोहर घोषित की जा चुकी है तथापि गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किए जाने की अपेक्षा बाकी है। भारत की समृद्ध गोपालन आधारित कृषि अर्थव्यवस्था के क्षरित होते जनाधार को नई संजीवनी मिलना आवश्यक है। यही लोकजीवन का अंग बनकर समाज की समृद्धि और खुशहाली का मार्ग प्रशस्त करेगी।

गोपालन के आर्थिक पक्ष के अलावा इसका आध्यात्मिक पक्ष भी क्रांति का संदेशवाहक है। गोपालन को राम और कृष्ण ने ही नहीं अपनाया, वरन ईसामसीह, भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, गुरुनानक और गुरु गोविंद सिंह ने भी गोपालन को संरक्षण दिया।

आज गोपालन का आर्थिक पक्ष भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कसौटी पर कसा जा रहा है। कुपोषित धरती को नई अक्षय उर्वरा शक्ति देने की सामर्थ्य सिर्फ गाय के गोबर और गोमूत्र में है—यह प्रमाणित हो चुका है। गोबर से जहाँ कागज, ऐजबेस्टस शीट्स, टाइल्स का उत्पादन शुरू किया जा चुका है तो वहीं गोमूत्र से औषधियाँ, कीटनाशक, रसायन पदार्थ बनाए जा रहे हैं।

देश के कई राज्यों में गोमूत्र और गोबर के क्रय-विक्रय केंद्र भी बनाए जा चुके हैं, जहाँ गोपालक गोउत्पादों को बेचकर गोपालन क्रांति के संवाहक बन रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार, एक गाय गोमूत्र, गोबर के रूप में वर्ष में तीस से चालीस हजार रुपये का लाभ पहुँचाकर जैविक खाद का कुटीर उद्योग बन सकती है।

यदि गोशालाएँ भी इन उत्पादों के क्रय-विक्रय में साझीदार बनती हैं तो दोहरा लाभ हो सकता है। जैविक खाद का अपार भंडार उपलब्ध हो सकेगा। रासायनिक खाद पर से निर्भरता समाप्त की जा सकेगी। साथ ही गोशालाएँ स्वावलंबी इकाई बनकर गोपालन क्रांति को शिखर पर पहुँचा सकेंगी।

प्राचीन भारत में कृषिशिल्प को सँवारने में जैविक खाद की महत्ता थी, जिसकी उपेक्षा का नतीजा सामने है। रासायनिक खाद से धरती ऊसर बनने के साथ ही जल का इतना दोहन हुआ कि नदियाँ सूखी और जलविहीन हो चुकी हैं। भूजल स्तर निरंतर नीचे जा रहा है। शेष भूजल प्रदूषित हो चुका है।

दावा भले ही दूसरी हरित क्रांति का किया जाए, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों का पूरी तरह क्षरण रोक पाना संभव नहीं रह गया है। इसका विकल्प जैविक खाद का उपयोग और गोवर्धन की उपासना है।

देश की अर्थव्यवस्था कृषि-आधारित है। यहाँ करीब 60 प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर हैं, लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि खेती के इस्तेमाल में आने वाली तकनीक उन देशों से आयात की जा रही है, जहाँ खेती पर निर्भरता केवल 5 से 6 प्रतिशत लोगों की है।

गाँवों से शहरों की ओर पलायन का सबसे बड़ा कारण खेती का आयातित उत्पादनों पर निर्भर बनना और खेती के परंपरागत संसाधनों की उपेक्षा करना है। इस आयातित कृषि दर्शन ने भारत में खेती को हानि का व्यवसाय बना दिया है और अब तो इसमें आम किसान की रुचि भी कम होती जा रही है। लगातार इस तरह खेती के नुकसानदेह होने का एक कारण गोवंश की उपेक्षा भी है।

भारत जैसे देश में, जहाँ गोमाता की पूजा होती है, आज उसे बहिष्कृत और तिरस्कृत किया जा रहा है। आम मान्यता है कि भारतीय दर्शन में गोमाता पूजनीय हैं और यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि गोमाता सबका विकल्प हैं। मृत्यु के क्षणों में गंगाजल जहाँ सुलभ नहीं, वहाँ गोमूत्र से ही मुक्ति की आशा की जाती है। माँ का आँचल छिन जाने पर दूध भोजन का काम करता है। गोमाता में ईश्वर का निवास है, इसलिए वह गायत्री का भी स्वरूप है। आज भारत की कृषि अर्थव्यवस्था का क्षरण गोमाता की उपेक्षा का दुष्परिणाम है।

पौराणिक आख्यान है कि सूर्यवंश के राजा दिलीप रथ में जा रहे थे, तब रास्ते में उन्हें गौ के दर्शन हुए, लेकिन राजा रथ से नहीं उतरे। प्रणाम नहीं किया। तभी उन्हें आभास हो गया कि उनके पुत्र न होने का कारण गौ का शाप है। तब वसिष्ठ मुनि ने उन्हें नंदिनी गाय देकर सेवा करने को कहा। दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा नंदिनी की सेवा में लग गए।

राजा दिलीप जब वन में नंदिनी की सेवा कर रहे थे, तब नंदिनी एक गुफा में प्रवेश कर गई, जहाँ शेर उसे शिकार बनाने को लपका। तब दिलीप ने सिंह से कहा कि वह खुद उसका शिकार बनने को उद्यत हैं, गाय को छोड़ दे। तभी नंदिनी ने राजा के गोवंश के प्रति समर्पण पर खुश होकर उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति का वरदान दिया। गुफा में शेर अंतर्धान हो गया। दिलीप के रघु पुत्र हुए और रघुवंश की उत्पत्ति हुई।

माना जाता है कि जब दैत्यों पर सभी अस्त्र-शस्त्र निरर्थक हो गए, असुरों का नाश करने के लिए दधीचि की अस्थियों की याचना की गई, वो उन्होंने दे दीं। दधीचि सच्चे गोभक्त थे और उनकी हड्डियों के फौलादी होने के पीछे यही कारण था कि उनका आहार केवल गाय का दूध था। क्षय रोग में आहार के रूप में गाय के दूध का सेवन उपयुक्त माना जाता है।

गोमूत्र, दही, गाय के दूध और घृत से बनने वाले पंचगव्य पर शोध जारी है और ऐसा मानते हैं कि इसमें मृतसंजीवनी का रूप लेने की क्षमता है। भगवान शंकर मृत्युंजय हैं। इसका एक कारण यह भी है कि उनका वाहन गोवंश का बैल है।

पुरानी मान्यताएँ आज विसंगत लगती हैं, लेकिन उन पर वैज्ञानिक आधार पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। आजादी के पूर्व जब अँगरेजों ने गंगा पर बाँध बनाने की योजना बनाई, तब पं. मदन मोहन मालवीय जी ने कहा था—

''गाय और गंगा देवताओं के आधार हैं। इनसे छेड़-छाड़ आपदाओं को आमंत्रण होगा।'' तब गंगा पर बाँध बनाने का इरादा छोड़ दिया गया था।

लोक और परलोक का रास्ता गाय और गंगा हैं। आज प्रदूषण, अवर्षा, कृषि की बदहाली और खाद्य-सुरक्षा के जर्जर होने के कारणों पर बहस आवश्यक है। महात्मा गांधी मानते थे कि आजादी हासिल करने से अधिक अहम प्रश्न गोवध पर प्रतिबंध लगाना है। सभी मत-पंथों के ग्रंथों में गोवध की मनाही है तथापि पश्चिमी नकल में पशुपालन के बजाय मशीनों पर निर्भरता बढ़ी है। देश की आबादी 2 % की दर से बढ़ रही है, लेकिन पशुधन सिमटता जा रहा है। आज आवश्यकता है कि गोपालन का आंदोलन के रूप में नया अवतार हो। इसी पर देश की समृद्धि एवं विकास आधारित हैं। ❑

गुरजिएफ यूरोप का प्रसिद्ध चिंतक एवं दार्शनिक था। एक बार एक व्यक्ति उनसे बारंबार आग्रह करने लगा कि वो उसे भगवान के दर्शन करा दें। उसके बार-बार बोलने पर गुरजिएफ उसे एक दिन नहर के किनारे ले गया। नहर सूखी पड़ी थी और वहाँ थोड़ी देर में पानी छोड़ा जाने वाला था। गुरजिएफ ने उस व्यक्ति को नहर के बीचोंबीच खड़ा होने को कहा। थोड़ी देर में पानी छोड़ा गया और वह व्यक्ति धीरे-धीरे डूबने लगा। जब पानी उसकी छाती से ऊपर उठने लगा तो उसे घबराहट होने लगी और वो भागने का यत्न करने लगा। गुरजिएफ उसे बचाने के बजाय उसके कंधे पर चढ़ गया और उसे वहीं पानी के बीच रोकने लगा। अब तो वह व्यक्ति बड़ा छटपटाने लगा और गुरजिएफ को एक तरफ धक्का देकर किनारे आ गया। किनारे आकर उसने गहरी साँस ली और फिर गुरजिएफ से कहा—''आप भी बड़े विचित्र इनसान हैं। भला ऐसे भी कहीं भगवान दिखते हैं।'' गुरजिएफ ने धीरे से उसकी पीठ पर हाथ फेरा और कहा—''मित्र! जितनी अकुलाहट तुम्हें उस पानी में से बाहर निकलने की हो रही थी, उतनी ही आतुरता भगवान से मिलने की होती तो तुम्हें मुझसे उनका पता न पूछना पड़ता। भगवान तो भक्ति के इच्छुक हैं, यदि हृदय से उनको पुकारा जाए तो वह तुरंत भक्त के पास खिंचे चले आते हैं।''

नाशवान होता है राजसी तप

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की सत्रहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक की विवेचना की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यह समझाते हैं कि सात्त्विक तप किस प्रकार का होता है ? वे कहते हैं कि परम श्रद्धा से युक्त होकर फल की कामना से रहित होकर जो तीन प्रकार का तप किया जाता है, वह तप सात्त्विक तप कहलाता है। यहाँ परम श्रद्धा से युक्त होने का अर्थ अटूट विश्वास वाले भाव के होने से है। इस संसार में चाहे लौकिक अथवा अलौकिक उपलब्धियाँ हों, बिना अटूट विश्वास के, श्रद्धा के कुछ भी प्राप्त करना असंभव ही होता है। श्रद्धा में ही समस्त सिद्धियों को हस्तगत कराने की सामर्थ्य होती है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। श्रद्धा जीवन में हो तो सारे चमत्कार घटित होते हैं। श्रद्धा होती है तो भगवान प्रह्लाद की पुकार पर खंभा फाड़कर बाहर निकलते हैं। श्रद्धा होती है तो ग्वाल-बाल गोवर्धन उठा लेते हैं, रीछ-वानर पानी पर पुल बना जाते हैं और मीरा के लिए भगवान विष पी जाते हैं। इस संसार का यह एक शाश्वत सत्य है कि यहाँ संत के संतत्व का आधार श्रद्धा है, देवता के देवत्व का आधार श्रद्धा है और भगवान की भगवत्ता का आधार भी श्रद्धा ही है। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि ऐसी अटूट, अविचलित श्रद्धा के साथ बिना किसी विघ्न-बाधा की परवाह किए आदरपूर्वक तप करते चलना सात्त्विक तप का प्रथम लक्षण है। वे इस परम श्रद्धा से युक्त भाव को तप की श्रेणी में पहला गिनते हैं।

इसके बाद वे निष्कामता के भाव को सात्त्विक तप का दूसरा लक्षण बताते हुए कहते हैं कि व्यक्ति श्रद्धायुक्त हो एवं उसमें निष्कामता भी हो तो वह स्वतः ही सात्त्विक हो जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों द्वारा जो श्रद्धाभाव से युक्त हों, फल की आकांक्षा से रहित हों, उनके द्वारा जो त्रिविध तप अर्थात शारीरिक, वाचिक और मानसिक तप किया जाता है— वही तप सात्त्विक होता है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण कहते हैं—

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥ *18॥*

शब्दविग्रह—सत्कारमानपूजार्थम्, तपः, दंभेन, च, एव, यत्, क्रियते, तत्, इह, प्रोक्तम्, राजसम्, चलम्, अध्रुवम्।

शब्दार्थ—जो (**यत्**), तप (**तपः**), सत्कार, मान और पूजा के लिए (तथा) (**सत्कारमानपूजार्थम्**), अन्य किसी स्वार्थ के लिए भी स्वभाव से (**च, एव**), या (**वा**), पाखंड से (**दम्भेन**), किया जाता है (**क्रियते**), वह (**तत्**), अनिश्चित (एवं) (**अध्रुवम्**), क्षणिक

फलवाला तप (**चलम्**), यहाँ (**इह**), राजस (**राजसम्**), कहा गया है (**प्रोक्तम्**)।

अर्थात जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए तथा दिखाने के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित और नाशवान फल देने वाला राजसिक तप कहा गया है। यह एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

राजसिक तप की व्याख्या का आधार एक ही है कि ऐसे व्यक्ति में दंभ और अहंकार उसके व्यक्तित्व का केंद्रबिंदु होते हैं। जिस तरह से सात्त्विक प्रवृत्ति वाले मनुष्य के व्यक्तित्व के केंद्र में श्रद्धा एवं समर्पण होते हैं, वैसे ही ऐसे व्यक्तित्व के केंद्र में दंभ एवं अहंकार होते हैं और इसलिए उसके लिए तप भी अहं के प्रदर्शन का एक माध्यम बन जाता है।

ऐसा व्यक्ति फिर तप भी इसलिए करता है, ताकि वो लोगों के सत्कार एवं मानप्राप्ति का केंद्र बन सके। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति फिर तप को '**दम्भेन एव च**' अर्थात दिखाने के भाव से ही करता है।

यदि हम ध्यान से देखें तो समाज की रीति ही ऐसी है। समाज किसी व्यक्ति की सफलता का आकलन बाह्य आडंबर, बाहरी प्रदर्शन के आधार पर करता है। तब जीवन एक प्रतिस्पर्धा में बदल जाता है।

किसी के पास नौकरी है यह महत्त्वपूर्ण नहीं होता, वो दूसरों से बेहतर भी होनी चाहिए। घर दूसरों से बड़ा हो, पैसा औरों से ज्यादा हो, समृद्धि अन्य की तुलना में अधिक दिखे—ये आज एक सामाजिक परिपाटी में बदल गए हैं। इनके केंद्र में अहंकार के प्रदर्शन का ही भाव विद्यमान है।

इसी भाव से व्यक्ति फिर तपस्या भी करने लग जाता है। ऐसा करने वाले फिर तपस्या को भी एक अहं प्रदर्शन का माध्यम मानते हुए सोचते हैं कि मुझे सबसे बड़ा तपस्वी दिखना चाहिए।

उस व्यक्ति ने एक अनुष्ठान किया तो मैं चार करूँ। उसने एक चांद्रायण किया तो मैं आठ करूँ। उनके माध्यम से हमारा परिष्कार हो पाया या नहीं, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि यह बन जाता है कि हम ज्यादा बड़े तपस्वी दिख रहे हैं या नहीं।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण पिछले अध्याय में दंभ की व्याख्या करते हुए कहते हैं—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥
—16/4

अर्थात—हे पार्थ! दंभ करना, घमंड करना, अभिमान करना, क्रोध करना, कठोरता रखना, अविवेकी होना—ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त व्यक्ति के लक्षण हैं।

सम्मान, बड़प्पन, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करने के लिए अपनी वैसी स्थिति न होने पर भी वैसी स्थिति का प्रदर्शन करने का नाम दंभ है। लोग सद्गुणों व सदाचारों को लेकर भी दंभी हो सकते हैं। अपने को धर्मात्मा, साधक, गुणवान आदि प्रकट करना या अपने में श्रेष्ठ गुणों को लेकर वैसा आचरण दिखाना, ये सब सद्गुणों को लेकर किया जाने वाला दंभ है।

भगवान कहते हैं कि ऐसा तप राजसी होता है और उसका परिणाम '**अध्रुवम्**' अर्थात अनिश्चित आता है। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए कि व्यक्ति को तप का परिणाम तो मिलता है; क्योंकि वो उसका कार्य है, पर उसके परिणाम में अंततः विनाश ही उसे मिलता है।

जैसे रावण तप करता है तो वरदान पाता है; क्योंकि वो उसके तप का फल है, परंतु अंततः वो

उसे नाश के मार्ग पर ही ले जाता है; क्योंकि उसमें निहित भाव राजसी है। ऐसा ही मेघनाद, भस्मासुर, बाणासुर, सहस्त्रार्जुन, बालि जैसे व्यक्तित्वों के साथ घटता है।

इस संदर्भ में एक प्रेरणाप्रद कथा संत ज्ञानेश्वर के प्रथम शिष्य की आती है, जिन्होंने 1400 वर्ष की समाधि लगाने के बाद एक अद्‌भुत सिद्धि को अर्जित किया। उनका नाम था—संत चांगदेव। उनको उनके तप का फल इस रूप में मिला कि मुरदों के सिर पर यदि वो हाथ फेरते तो वो जीवित हो उठते थे।

स्वाभाविक था कि इसके कारण अनेकों लोग रोज उनके पास अपने संबंधियों के शव लेकर के आते—वे सिर पर हाथ फेरते तो वो जी उठते। लोग उनकी जय-जयकार करते हुए लौटते। परिणामस्वरूप उनका अहंकार चरम पर पहुँच गया।

एक दिन वे ध्यान में बैठे थे। अनेकों लोग अपने घरों से अपने संबंधियों के शवों को लेकर के आए हुए थे और उनकी आँखें खोलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इतनी देर में संत ज्ञानेश्वर की बहन मुक्ताबाई वहाँ से निकलीं।

उन्होंने लोगों से इस मजमे का कारण पूछा तो वे बोले—"अभी संत चांगदेव आँखें खोलेंगे, तब ये मुरदे उनका स्पर्श पाकर जी उठेंगे।" यह सुनकर मुक्ताबाई बोलीं—"उसके लिए इनके आँखें खोलने की प्रतीक्षा करने की क्या आवश्यकता है?" मुक्ताबाई ने तुलसीदल लिया, सभी मृतकों के मुँह में डाला एवं उनके कान में गायत्री मंत्र बोला—सभी मृतक जी उठे।

उस दिन जब चांगदेव की आँखें खुलीं तो उन्होंने देखा कि वहाँ एक भी मृतक नहीं है। उन्होंने अपने शिष्यों से उसका कारण पूछा तो उन्होंने मुक्ताबाई द्वारा किए गए चमत्कार के विषय में बताया। यह सुनकर चांगदेव के अहंकार को बड़ा आघात पहुँचा। उन्हें लगा कि आठ वर्ष की बालिका के पास वह सिद्धि है, जो उन्हें चौदह सौ वर्ष की समाधि के बाद मिली।

उन्होंने ध्यान लगाकर जानना चाहा कि यह सिद्धि प्राप्त कराने वाले महापुरुष कौन हैं? उन्हें आभास हुआ कि मुक्ताबाई, संत ज्ञानेश्वर की बहन है और संत ज्ञानेश्वर ईश्वर के अवतार हैं। उनका मन संत ज्ञानेश्वर से मिलने का हुआ और इस आशय के साथ वे उनको पत्र लिखने के लिए बैठे, परंतु बहुत विचार के बाद भी यह निर्धारित न कर सके कि उनको कैसे संबोधित करें? बड़े के रूप में करें या छोटे के रूप में?

बहुत देर सोचने पर भी जब वे निर्धारण न कर सके तो उन्होंने एक कोरा कागज दूत के माध्यम से संत ज्ञानेश्वर को भिजवाया। संत ज्ञानेश्वर तो उसे देखकर कुछ नहीं बोले, परंतु मुक्ताबाई हँस दीं। उन्हें हँसता देखकर दूत ने उनसे हँसने का कारण पूछा तो वे बोलीं—"चौदह सौ वर्ष के बाद भी कोरे-के-कोरे रह गए, कोरा कागज भेज दिया है। यदि ज्ञान होता तो यह भान तो होता कि संत ज्ञानेश्वर कौन हैं?"

यह सुनकर चांगदेव को और चोट पहुँची। उन्हें लगा अब मिलना जरूरी है। वे संत ज्ञानेश्वर से मिलने के लिए निकले, परंतु अभी भी अहंकार गया नहीं था। उन्हें लगा सामान्य तरीके से तो कोई भी जा सकता है, यह कैसे पता चलेगा कि मैं सिद्ध संत हूँ। यह सोचकर उन्होंने शेर की सवारी बनाई और साँप का चाबुक लिया। पीछे भीड़ जय-जयकार करती चली।

जब चांगदेव और उनके शिष्य संत ज्ञानेश्वर के गाँव पहुँचे तो वे अपने अहाते की मुंडेर पर बैठे थे। लोगों ने उनसे कहा—"चांगदेव शेर पर

चढ़कर आ रहे हैं, आप कैसे जाएँगे?'' संत ज्ञानेश्वर बोले—''हमारे पास दीवार भर है और जिस दीवार पर बैठे थे, उसी को उड़ने का इशारा उनने किया।'' यह दृश्य देखकर चांगदेव का अहंकार टूटा।

चांगदेव की यह कथा इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि चौदह सौ वर्ष की तपस्या उनके पास भी थी, परंतु वह राजसिक थी। वह राजसिक होने के कारण उनके अहंकार के पोषण का माध्यम बन गई थी। उसी को तोड़कर संत ज्ञानेश्वर ने उनको अपना पहला शिष्य बनने योग्य बनाया। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों का तप राजसी होता है व उसका परिणाम अशुभ मिलता है।

(क्रमशः)

एक किसान स्वभाव से ही आलसी था। वह थोड़ी देर खेत में काम करता और फिर घर लौट आता । परंतु उसकी पत्नी न तो उसके भोजन आदि का ध्यान रखती और न ही उसके साथ कोई आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करती। यह बात किसान को सदा कचोटा करती थी। उसने अपने मित्र से अपने मन की बात साझा की तो उसके मित्र ने उसे एक उपाय बताया, जिसे सुनकर किसान कुछ आशान्वित हुआ।

अगले दिन किसान प्रातःकाल से ही खेत पर चला गया और वहाँ कठिन परिश्रम में निरत हो गया। दोपहर बीत जाने पर उसने देखा कि उसकी पत्नी उसके लिए भोजन लेकर आ रही है और वह उससे प्रेम भरे शब्दों में बोली—''स्वामी! आप थक गए होंगे। आएँ! भोजन कर लें।'' किसान आश्चर्यपूर्ण शब्दों में बोला—''आज इतना प्रेम भरा व्यवहार कैसे?'' उसकी पत्नी ने उत्तर दिया—''आज से पहले आपने कभी इतना श्रम नहीं किया, इसलिए आज आपको भोजन की आवश्यकता अधिक है।'' प्राथमिकता श्रम को ही मिलती है, आलस्य को नहीं। सही है कि अपने सुधार द्वारा ही अपने निकटवर्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन संभव है।

सफेद सोने से बदलेगी तकदीर देश की

सफेद सोने के नाम से विख्यात लीथियम से देश की तकदीर बदलने वाली है। भारत के जम्मू क्षेत्र में माँ वैष्णो देवी की तलहटी में लीथियम का अकूत भंडार मिला है। मालूम हो कि मोबाइल, लैपटॉप से लेकर वाहनों की रिचार्जेबल बैटरियों में लीथियम का उपयोग होता है, जिसके कारण यह एक बेशकीमती खनिज है। संभवत: भारत ही नहीं, विश्व के लिए वर्ष 2023 की यह सबसे बड़ी खोजों में से एक है।

हालाँकि खनिज के इस खजाने के बारे में दशकों से अनुमान था, जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (जीएसआई) ने 26 वर्ष पहले वर्ष 1995-97 में भी इस क्षेत्र में लीथियम होने की एक विस्तृत रिपोर्ट सरकार को भेजी थी, लेकिन तब इस पर कोई कार्रवाई नहीं हो पाई थी। इसके प्रकट होने का संयोग इसी वर्ष बना है। विशेषज्ञों के अनुसार 59 लाख टन लीथियम भंडार के साथ भारत के हाथों में जैसे एक खजाना लग गया है।

मालूम हो कि लीथियम एक दुर्लभ संसाधनों की श्रेणी में आता है, जो अभी तक भारत में नहीं मिलता था और भारत को शत-प्रतिशत इसके लिए आयात पर निर्भर रहना पड़ता था, लेकिन इस खोज के साथ स्थिति पलटती नजर आ रही है। अब इस संदर्भ में देश के आत्मनिर्भर भारत का सपना साकार होने वाला है। साथ ही निकट भविष्य में भारत पूरे विश्व में व्यापक स्तर पर इसके निर्यात की स्थिति में होगा।

लीथियम के संदर्भ में पहले कुछ रोचक तथ्यों की चर्चा करनी यहाँ प्रासंगिक होगी। आवर्त सारणी (पीरियोडिक टेबल) में यह तीसरा तत्त्व है। यह सबसे हलकी धातु है तथा सबसे कम घनत्व वाला ठोस पदार्थ है, जिसके कारण यदि इसे पानी में डाला जाए तो यह पानी पर तैरने लगता है। लीथियम एक चमकीली, मुलायम धातु है। इस कारण धातु होने के बावजूद इसे चाकू से काटा जा सकता है। रासायनिक दृष्टि से यह अलौह (नॉन फेरिक) क्षारीय धातुसमूह का सदस्य है और अन्य क्षारीय धातुओं की तरह अत्यंत अभिक्रियाशील (रिएक्टिव) है।

पानी में डालने पर लीथियम तीव्र प्रतिक्रिया करता है। यदि इसे हवा में छोड़ दिया जाए तो यह वायु में विद्यमान ऑक्सीजन के साथ अभिक्रिया करने लगता है व शीघ्र ही आग पकड़ लेता है। इस कारण इसको तेल में डुबोकर रखा जाता है। अपनी तीव्र अभिक्रियाशीलता के कारण यह प्रकृति में कभी शुद्ध रूप में नहीं मिलता, बल्कि अन्य तत्त्वों के साथ यौगिकों के रूप में पाया जाता है। लीथियम सबसे चमकीले लाल रंग में जलता है। इसलिए आतिशबाजी में लाल चिनगारी के लिए लीथियम को सम्मिलित किया जाता है।

लीथियम का उपयोग मोबाइल फोन, लैपटॉप, डिजिटल कैमरों व इलैक्ट्रिक वाहनों की रिचार्जेबल बैटरियों में किया जाता है। इनमें सबसे अधिक इसका 71 प्रतिशत उपयोग इलैक्ट्रिक वाहनों में किया जाता है। इसके अलावा मैनिक अवसाद व बाइपोलर डिसऑर्डर जैसे गंभीर मानसिक रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। चीनी मिट्टी के कार्यों में भी इसका उपयोग किया जाता है। एल्युम्युनियम और मैग्नीशियम जैसी धातुओं में भार को कम करने व इनको मजबूती प्रदान करने

के लिए लीथियम को मिश्र धातु (एलोय) के रूप में मिलाया जाता है। लीथियम तत्त्व के रूप में उपलब्ध नहीं रहता। इसका उत्पादन लीथियम के अयस्क के विद्युत अपघटन (इलैक्ट्रोलाइसिस) प्रक्रिया के अंतर्गत किया जाता है।

जियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (जीएसआई) के उच्चस्तरीय सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट हुआ है कि माता वैष्णो देवी तीर्थ की तलहटी में बसे रियासी जिले के सलाल गाँव में मिले इस लीथियम भंडार की गुणवत्ता सर्वोत्तम श्रेणी की है। विशेषज्ञों के अनुसार सामान्य श्रेणी में लीथियम का ग्रेड 220 पीपीएम अर्थात पार्ट्स पर मिलियम होता है; जबकि जम्मू-कश्मीर में मिले भंडार का लीथियम 550 पीपीएम से अधिक ग्रेड का है। इसके साथ भारत विश्व के शीर्ष देशों की कतार में शामिल हो गया है।

अभी तक भारत लगभग शत-प्रतिशत लीथियम विदेशों से आयात करता रहा है, इसमें भी लगभग 80 प्रतिशत चीन से आता है, लेकिन अब भारत का यह खजाना चीन के कुल भंडार से तीन गुना अधिक है। मालूम हो कि चिली 93 लाख टन लीथियम भंडार के साथ पहले स्थान पर है, ऑस्ट्रेलिया 62 लाख टन के साथ दूसरे स्थान पर है।

जम्मू-कश्मीर के 59 लाख टन लीथियम भंडार के साथ भारत तीसरे नंबर पर आ गया है। अर्जेंटीना 27 लाख टन भंडार के साथ चौथे स्थान पर, चीन 20 लाख टन भंडार के साथ पाँचवें और अमेरिका 10 लाख टन भंडार के साथ छठे स्थान पर है। विश्व का लगभग 50 प्रतिशत लीथियम भंडारण दक्षिण अमेरिका के अर्जेंटीना, बोलीविया और चिली में पाया जाता है, जिन्हें लीथियम त्रिकोण देश के नाम से जाना जाता है।

मालूम हो कि इस भंडार के मिलने से पहले तक भारत इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए अर्जेंटीना, चिली, ऑस्ट्रेलिया और बोलीविया जैसे लीथियम धनी देशों की खदानों में हिस्सेदारी खरीदने पर काम कर रहा था। इसके लिए बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा खरच करनी पड़ती थी।

भारत ने वित्त वर्ष 2020-21 में लीथियम ऑयन बैटरी के आयात पर 8984 करोड़ रुपये खरच किए थे। इसके अगले वर्ष 2021-22 में भारत ने 13,838 करोड़ रुपये की लीथियम ऑयन बैटरी आयात की थी।

हालाँकि भारत को अभी लंबी दूरी तय करनी है; क्योंकि लीथियम का उत्पादन और रिफाइनिंग एक बेहद कठिन कार्य है, जिसके लिए भारत को आधुनिक तकनीक की व्यवस्था करनी है। भारत का वर्ष 2030 तक का लक्ष्य 30 प्रतिशत निजी कारें, 70 प्रतिशत कमर्शियल वाहन और 80 प्रतिशत दो-पहिया वाहनों को इलैक्ट्रिक बनाने का है। एक अनुमान के हिसाब से वर्ष 2035 तक विश्व की सड़कों पर चलने वाले आधे वाहन इलैक्ट्रिक होंगे। इन इलैक्ट्रिक वाहनों की कीमत कम होगी तथा पर्यावरण की दृष्टि से वे अधिक किफायती होंगे।

जम्मू-कश्मीर प्रांत में लीथियम के अथाह भंडार मिलने के साथ यहाँ के स्थानीय लोग उत्साहित हैं, जिनके जीवन स्तर का कायाकल्प होना सुनिश्चित है। देश के स्तर पर यह खोज एक बड़ी उपलब्धि के रूप में देखी जा सकती है। यह खोज हलकी धातुओं के आयात पर भारत की निर्भरता को समाप्त कर देगी और चिकित्सा के बुनियादी ढाँचे को मजबूत करेगी। इसके साथ इलैक्ट्रिक वाहनों का उपयोग करने की देश की महत्त्वाकांक्षी योजना में सहायता मिलेगी। आजादी के स्वर्णकाल में यह लीथियम खजाना एक दैवी सौगात की तरह है, जिसे महाशक्ति के रूप में उभरते समृद्ध भारत के सपने को साकार करने की दिशा में एक मील के पत्थर के रूप में देखा जा सकता है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

इस युग के भगीरथ (पूर्वार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी अपने इस भावपूर्ण एवं मौलिक उद्‌बोधन में सभी गायत्री परिजनों का परिचय उस अलौकिक सौभाग्य से कराती हैं, जो गायत्री परिवार का अंग बनने के नाते उन्हें मिल सका। वंदनीया माताजी कहती हैं कि परमपूज्य गुरुदेव से जुड़ पाना ही हममें से प्रत्येक के जीवन का एक अविस्मरणीय सौभाग्य है और उस सौभाग्य का सतत स्मरण अनिवार्य हो जाता है। परमपूज्य गुरुदेव की तुलना वे इस युग के भगीरथ से करती हुई कहती हैं कि गुरुदेव ने इस युग में ज्ञान की गंगा का अवतरण करके वह कर दिखाया, जो युगों-युगों तक संभव न हो पाता। वंदनीया माताजी मथुरा की विदाई का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए हर गायत्री परिजन को याद दिलाती हैं कि गुरुसत्ता ने कितने प्रेम व आत्मीयता से इस परिवार का निर्माण किया है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

इस युग के भगीरथ

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! आज गायत्री जयंती है। माँ गायत्री का अवतरण आज के दिन हुआ था। आज ही गंगा दशहरा भी है। भगीरथ ने तपस्या की थी और माँ गंगा को लाने में आज के ही दिन सफल हुए थे। वही कथा, वही कहानी गुरुजी के बारे में भी चरितार्थ होती है कि ज्ञान की गंगा बहाने में और ज्ञान की गंगा को लाने में जितना श्रम उन्होंने किया है, मैं समझती हूँ कि यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि भगीरथ ने जो तपस्या की थी, वो संभव है दो-पाँच साल की होगी, दस साल की होगी, बीस साल की होगी; लेकिन एक भगीरथ ने जो जन्म लिया है, उस भगीरथ ने सतहत्तर वर्ष तक निरंतर तप किया है और ज्ञान की गंगा को लाने में वे सफल हो गए। जो जनमानस अग्नि में धधक रहा था, सुलग रहा था, उनके ऊपर शीतलता, उनके मनों में शीतलता लाने के लिए उन्होंने वह कदम उठाया, जिसको ज्ञानगंगा कहते हैं।

अभी लड़के गा रहे थे। ज्ञान की गंगा बहाने में कितना उन्होंने तप किया है कि अपनी हड्डियों को गला डाला है। जिन्होंने कभी 5 साल पूर्व देखा होगा और अब जो देख रहे होंगे, कितना अंतर आ गया। अब तो बहुत अंतर आ गया। उन्होंने तपस्या से सारा शरीर जर्जर कर लिया। किनके लिए? सगरसुतों के लिए किया है।

सगरसुतों को तारने के लिए उन्होंने यह बीड़ा उठाया है कि हम ज्ञान की गंगा बहाएँगे। घर-घर पहुँचेंगे, जितनी भी सामर्थ्य है, उसके अनुसार हर हालत में, हर दिमाग तक, हर हृदय को छूने के

लिए हमको जाना है। एक माँ ने शरीर से जन्म दिया और दूसरी माँ ने दिव्यता से जन्म दिया। किस माँ ने? गायत्री माँ ने। माँ हर समय आँचल की छाया करती रहती है, हर समय अपने प्राणों से लगाए रहती है किसको? अपने बेटे को। किस बेटे को?

जिसने कि अपने जीवन को निछावर कर दिया, उस बेटे को अपनी छाती से लगाया है और उस बेटे ने क्या किया है? उस बेटे ने भी कहा है कि माँ हमें तेरे चरणों की सौगंध है, हम तुम्हारे लिए बलिदान हो जाएँगे। जो आपका आदेश, जो आपकी प्रेरणा है, वह निरंतर हमारे जीवन में प्रवाहित होती रहेगी और दूसरों के लिए हम निरंतर गंगा के तरीके से बहते रहेंगे।

मथुरा से विदाई

अखंड ज्योति कार्यालय से जब हम आए थे, तो हम दो जन आए थे। यह एक बहुत बड़ी घटना है। कैसे? बच्चे बिलख रहे थे कि शायद जिन्होंने वह माहौल देखा होगा, तो मैं समझती हूँ कि उनके भी हृदय द्रवित होने में देर नहीं लगी होगी। यह कहें कि सीता और राम जा रहे थे। चलिए ये न कहें, पर यह तो जरूर कहेंगे कि कोई ऋषि जा रहा है, जिसने कि पलटकर के अभी तक मथुरा को नहीं देखा है, चले आए, तो चले आए। उसका क्या परिणाम हुआ? चलिए, आज मैं आपको बताने आई हूँ कि तपश्चर्या से उनको क्या-क्या मिला?

देखिए, आज मैं आपसे निवेदन करने आई कि माँ की सच्चे हृदय से आराधना करने से व्यक्ति का व्यक्तित्व ऊँचा उठता है, हृदय का परिष्कार होता है और जो कमीनापन होता है, वह हट जाता है। मनुष्य के जीवन में जो क्षुद्रपन होता है, वह हट जाता है। जब हम यहाँ आए तब शुरू में ऐसा लगा कि अरे यह क्या हुआ? बच्चों को, कुटुंबियों को रोते हुए छोड़ आए, यह क्या हुआ? कहते हैं कि जब राम वनवास गए, तो सारी अयोध्या रो रही थी, बिलख रही थी। आप सही मानना, बिलकुल वही स्थिति मथुरा में थी।

जब हम लोग चले, फिर क्या हुआ? जब हम यहाँ आए, थोड़े दिन हमको अपने मन में जरूर ऐसा कुछ लगा, मुझे स्वयं लगा, उनको तो नहीं लगा और जिस दिन 20 जून को वे अज्ञातवास को जाने लगे थे, सन् 1971 की बात आपको बता रही

विज्ञान अर्थात विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त करना। किसी ने दूध का नाम ही नाम सुना है। किसी ने दूध देखा भर है और किसी ने दूध पिया है। जिसने सिर्फ सुना है, वह अज्ञानी है; जिसने देखा है, वह ज्ञानी है और जिसने पिया है, वह विज्ञानी है, विशेष रूप से ज्ञान उसी को हुआ है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

हूँ। यह हमारा 16वाँ वर्ष है, जिसको हम सोलहवीं जयंती कह सकते हैं। 20 तारीख को हमको यहाँ आए 16 वर्ष हो जाएँगे। गुरुजी जिस समय अज्ञातवास को जाने लगे, तो जितने सारे हमारे परिजन थे, जितनी गाड़ियाँ यहाँ आई थीं, उन्होंने यह कह रखा था कि चाहे जो हो जाए, जहाँ गुरुजी जाएँगे, वहीं हम जाएँगे। बेचारे बाहर सड़कों पर पड़े थे, बरामदे में पड़े थे। तब सारी जमीन खुली हुई थी। वे सारे में पड़े हुए थे कि गुरुजी जाएँगे, तो हम जरूर जाएँगे। हम जरूर दर्शन करेंगे। हम

उनके साथ जाने की कोशिश करेंगे। कौन कर रहा है? उनके हृदय में वेदना थी न, अपने पिता को छोड़ने में उनको वेदना हो रही थी।

मणिमुक्तकों का हार

उन बच्चों को ऐसा मालूम था कि गुरुजी चार बजे जाएँगे कि पाँच बजे जाएँगे, लेकिन ढाई बजे सुबह जब सब अचेत हो करके सो रहे थे, वो उठकर के, नीचे उतरकर आए, मैं साथ-साथ आई और आ करके उनके चरण छुए, उनको विदा किया। मैं स्वयं तो नहीं गई थी, क्योंकि मेरे लिए आज्ञा नहीं थी।

यह आज्ञा थी कि बच्चों को सँभालना है। कौन से बच्चे? जो आप लोग बैठे हैं, इनको सँभालना है, गायत्री तपोभूमि को सँभालना है और शांतिकुंज को सँभालना है। तुमको तो अडिग हो करके रहना है, लोहे की हो करके रहना है, धातु की हो करके रहना है, तुम पिघलना मत, पिघल जाओगी, तो ये बच्चे भी पिघल जाएँगे।

तुम कठोर रहना, यह हमारा आदेश है। वे चले गए। दो बच्चों को छोड़कर आए थे, हमें कितने बच्चे मिल गए? बेटे! हमारी अखण्ड ज्योति जो छपती थी, तो मैं समझती हूँ 18,000 थी और युग निर्माण योजना 12,000 थी, सब मिलाकर 30,000 थी और अब इतनी विशालता अहा! क्या कहने के। बेटा! मैं समझती हूँ 5,00,000 से ज्यादा हो गई। शक्तिपीठें हो गईं। गायत्री तपोभूमि बनाई थी कि गायत्री माँ के लिए कोई स्थान तो होना चाहिए न, माँ को फैलाना चाहिए।

बेटे! सब जगह सब व्यक्ति नहीं जा सकते। सब व्यक्ति मथुरा नहीं आ सकते, तो क्या करना चाहिए? अब फैलाना चाहिए, तो उन्होंने शक्तिपीठों का निर्माण कराया। कितनी शक्तिपीठें हैं? मैं समझती हूँ कि 4000 के आस-पास होंगी और 14,000 स्वाध्याय मंडल हैं।

कितनी संख्या हो गई? सबको मिलाकर मैं समझती हूँ कि बहुत जनसंख्या हो गई और कौन से हो गए? वे बेटे और बेटियाँ हो गए। कौन से बेटे-बेटी हो गए। वे हो गए, जो हमने भावनाओं से और सिद्धांतों से सँजोकर के रखे हैं।

मंगोलिया में चांगशेन नामक एक ईमानदार अधिकारी रहता था। एक बार उसके एक मित्र ने उसे रिश्वत देते हुए कहा—"मित्र! यह धन ले लो और मेरा काम कर दो। हम दोनों के अतिरिक्त और किसी को इस बात का पता नहीं चलेगा।" चांगशेन बोला—"नहीं मित्र! हम दोनों के अतिरिक्त यहाँ परमात्मा भी तो मौजूद है। सब से छिपा लूँगा, पर उससे तो कुछ भी छिपा नहीं है।" उसके मित्र का सिर लज्जा से झुक गया।

जैसे गोताखोर समुद्र में जाता है और मणिमुक्तक निकालकर लाता है और उन मुणिमुक्तकों का हार बनाता है। आप सही मानना कि आपको गोताखोर ने समुद्र में से निकाला है और उन मणिमुक्तक का हार पिरोया है। आप कौन हैं? आप मणिमुक्तक हैं। आप कौन हैं?

आपके अंदर वो देवत्व है, अभी जो लड़के गीत गा रहे थे—देवत्व।

बेटे! आपके हृदय में गुरुजी ने देवत्व पैदा किया है। आप स्वयं कुछ नहीं थे, स्वयं कहाँ थे? स्वयं तो जैसे थे, वैसे ही थे, लेकिन गुरुजी ने आपके अंदर ज्ञान की गंगा को प्रवाहित करके आपको देवताओं की श्रेणी में खड़ा कर दिया। हमारे कितने ही बच्चे हैं, जो कि नौकरी छोड़कर आए।

आज के युग में जो अय्याशी का युग है, कोई नौकरी छोड़ने के लिए तैयार होता है? नहीं, छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता है। लेकिन कितने ही लड़के ऐसे हैं, जिन्होंने ऐसा कदम उठाया। कितने ही क्यों? मैं तो सभी को कहूँगी कि हमने जो भी आवाज उठाई, वह कभी अपूर्ण नहीं रही, पूरी हुई।

सहस्त्रकुंडीय यज्ञ का चमत्कार

कौन-कौन सी पूरी हुई? जब हमने किसी जमाने में 1000 कुंडीय यज्ञ किए थे, तो लोग यह कहते थे कि आप कर लेंगे, 1000 कुंडीय यज्ञ? आप तो जरा से हैं, आपकी क्या हैसियत है, जो आप कर लेंगे।

आचार्य जी आप यह मत करिए, पंडित जी आप यह मत करिए, गुरुजी आप यह मत करिए। आप काहे को अपना घर नीलाम करने पर उतारू हैं; लेकिन उनका विश्वास था, किस पर? उस सत्ता पर, जिसके बल पर उन्होंने संकल्प लिया और देखते-ही-देखते 1000 कुंडीय यज्ञ सफल हो गया और लोग दाँतों तले उँगली दबाने लगे।

उन्होंने यह कहा कि—आज के युग में हमने कभी ऐसा सुना था कि महाभारतकाल में ऐसा यज्ञ हुआ था। इसमें 4,00,000 व्यक्ति आए थे और इसमें कितने ही ऋषियों के नाम पर नगर बसाए गए थे। रात और दिन चौका चलता था। सही मानना कि पाँच दिन जिस किसी ने भी देखा होगा, आज से 30-35 साल पहले, तो मैं समझती हूँ उनको मालूम होगा कि पाँच दिन तक हमको खड़े ही रहना पड़ा।

हमारे मुँह में अन्न का एक दाना भी नहीं गया। स्टेज पर ही खड़े रहते थे, दोनों के पैर सूज कर ढोल हो जाते थे। रात को आते थे, फिर सुबह जाते थे। पैदल आना, पैदल जाना, किस सत्ता ने इतना बड़ा काम करा लिया? उनको विश्वास था और श्रद्धा थी। उस श्रद्धा और विश्वास ने सारा काम करा लिया। सारे भारतवर्ष में 1000 कुंडीय के पाँच आयोजन हुए थे। पहला यज्ञ हुआ था—मथुरा में, दूसरा महासमुंद में हुआ था, तीसरा बहराइच में हुआ था, चौथा टाटानगर और पाँचवाँ पोरबंदर में हुआ था। ऐसे पाँच-छह जगह यज्ञ हुए थे।

बेटे! हजार यज्ञ किसे कहते हैं? अभी बस और सुनते जाइए। 1000 यज्ञ इस साल हुए हैं और गुरुजी ने कहा है कि अगले वर्ष और उससे आने वाले वर्ष 1,00,000 यज्ञ होंगे तो अभी तक जितने संकल्प लोगों ने लिए हैं पिछले वर्ष के आप देख लेना, समझती हूँ कि 2000 के आस-पास तो पिछले वर्ष के संकल्प हैं और इस वर्ष के संकल्प हैं, जिन्होंने कि जनवरी के बाद से संकल्प लिए हैं और जो अब लेने वाले हैं, जो फिर लेने वाले हैं, ये पूरे होंगे?

हाँ बेटे! बिलकुल पूरे होंगे। आप देखते जाइए कि पूरे होते हैं, नहीं होते हैं। अभी हमारे पास कितनी गाड़ियाँ हैं; और हो जाएँ, तो आप यह मानकर चलिए कि हम जाने कितने यज्ञ कर लेंगे। हमारे पास कार्यकर्त्ता हों, तो देखना हम करते हैं कि नहीं करते हैं।

तो कार्यकर्त्ता कहाँ से आएँगे माताजी ? बस, बेटे ! यही मत पूछ कि कहाँ से आएँगे ? इनको हम पैदा करेंगे ? गुरुजी रानी मक्खी हैं, वे इतनी संतान पैदा कर देते हैं कि पूछो ही मत।

भरोसा और विश्वास रखें

वे आप में से निकालेंगे, जो भी आप में से समय दे सकता हो, तो आप समय देना। आप निकलकर आना, बाहर काम कराएँगे। आपसे यहाँ काम कराएँगे, पर निकलना तो सही बेटे, संकीर्ण तो मत बनना। उदार बनिए। पैसा ही सब कुछ नहीं होता, पैसा भी होता है। ये सारा-का-सारा जो संचालन होगा, वो किससे होगा ? पैसे से ही होगा न। गाड़ियाँ किससे आएँगी ?

बेटे ! गाड़ियाँ और खरीदनी हैं। हमने जयपुर गाड़ियाँ भेज दी थीं। एक लड़के से कह दिया था कि जरा बेच दे इनको, फिर हमने कहा कि वापस ला, अभी तो हमको और खरीदनी हैं। इस साल हम 20-25 गाड़ियाँ और खरीदेंगे।

ये सारे-के-सारे छोटे से लेकर बड़े आयोजन होंगे। ये किसका है ? एक अदृश्य सत्ता है, जिसके ऊपर हमारा भरोसा और विश्वास है। जिसने अब तक नैया पार लगाई है, वही लगा रही है और वही लगाएगी।

बेटे ! जब तक हम जिंदा रहेंगे, तब तक और जब नहीं रहेंगे, तब भी वही पार लगाएगी। हम ऐसा किए जा रहे हैं। हमारी भूमि ऐसी संस्कारवान है कि यह देती है और देती रहेगी। आप यह मत समझिए कि गुरुजी-माताजी नहीं रहे तो हम अनाथ हो जाएँगे, फिर कहाँ से पैदा होंगे ? नहीं बेटे ! हमारी रूह रहेगी, हमारी शक्ति रहेगी और समस्त संसार में व्याप्त रहेगी।

एक-एक कण में, शांतिकुंज की हर ईंट में, हर व्यक्ति के दिल में, दिमाग में व्याप्त रहेगी। जो हमारे बच्चे हैं, उनके अंदर वह चिनगारी हमने पैदा कर दी है कि वह चिनगारी लगी रहेगी, तो उन्हीं में से वे पौधे निकल-निकलकर आएँगे। बेटे ! कितना काम करना है ?

इसी वर्ष आपका नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण हो चुका है। मैं समझती हूँ कि 5000 से ज्यादा शिक्षक यहाँ नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करके गए हैं। अन्य; जिसमें बिहार है, गुजरात है, ओडिशा है, उन सरकारों के हमारे पास पत्र आए हुए पड़े हैं कि आप हमारा नैतिक शिक्षण करिए। यह कौन कर रहा है ? यह कौन-सी शक्ति कर रही है ?

बेटे ! वही शक्ति करा रही है, जिसका कि गुरुजी ने संकल्प लिया है। जो कदम उठाया, वह हर पल प्रेरणा देती रहती है। हर समय प्रेरणा देती रहती है। कितना विशाल काम करने को पड़ा है, वह कौन पूरा करेगा ?

वही शक्ति पूरा करेगी। माँ गायत्री ही पूरा करेंगी, लेकिन हाथ हमारे काम करेंगे, दिमाग हमारा काम करेगा। आलस्य और प्रमाद में पड़े रहे, तो माँ क्या कर सकती हैं ? माँ तो प्रेरणा देती हैं न कि बेटे उठो, जागो, हम आपकी उँगली पकड़ते हैं, हम आपका सर सहलाते हैं, हम वायदा करते हैं।

अभी एक लड़के ने गीत गाया था कि 'छाती से लगा लो, चाहे आँचल से हटा लो।' माँ कभी आँचल से हटाती है क्या ? वह कभी नहीं हटाती। उसकी तो आँचल की छाया हर समय बनी रहती है। उसके तो वरदहस्त ऐसे बने रहते हैं कि बस, हम धन्य हो जाते हैं। जो उसके आँचल को पकड़ता है, वह धन्य हो जाता है और उससे अनेकों लोग धन्य हो जाते हैं।

(क्रमशः अगले अंक में समापन)

अभिनव कार्यक्रमों का केंद्र बना विश्वविद्यालय

'सौंदर्य से तुम्हारे सुंदर जहान सारा'—उक्त पंक्तियों में यह सत्य है कि इस सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास है, किंतु उसमें भी किन्हीं तत्त्वों में वे अप्रतिम सौंदर्य के रूप में प्रकाशित हैं। समस्त प्राणियों में वे विद्यमान अवश्य हैं, किंतु मनुष्य में उनका प्रकाश कुछ अधिक है और यही कारण है कि मनुष्य ईश्वर का राजकुमार है। इस तथ्य से भले ही कोई अपरिचित बना रहे, किंतु सत्य फिर भी बदल नहीं सकता है।

ईश्वर के ऐश्वर्य के दर्शन उनकी बनाई इस सृष्टि में सहजता से किए जा सकते हैं। आवश्यकता है तो मात्र उस दिव्यदृष्टि की, जो व्यक्ति को उस अनंत ऐश्वर्यवान के दर्शन करा सके। यहाँ दृष्टि एक पैमाना है और उसी आधार पर विभिन्न प्रकार के दृष्ट तत्त्वों के मानकों को तय किया जाना संभव बन पड़ता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय पूज्य गुरुदेव की तप-संपदा के आधार पर न केवल दिव्य संपदाओं से लाभान्वित हुआ है, बल्कि भौतिक जगत् के अनेकानेक मानकों पर भी खरा उतरा है।

जिस क्रम में परमपूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक जन्मदिवस वसंत पंचमी के पर्व पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय को आईएसओ प्रमाणपत्र प्रदाता कंपनी एंबिशियस एसेसमेंट प्राइवेट लिमिटेड के अधिकारी द्वारा आईएसओ-9001:2015 प्रमाणपत्र प्रदान किया गया। इस विशेष प्रमाणपत्र के लिए श्रद्धेयद्वय एवं आदरणीय प्रतिकुलपति महोदय ने संबंधित विभाग एवं समस्त परिजनों का धन्यवाद किया।

विदित हो कि आईएसओ—9001 : 2015 एक अंतरराष्ट्रीय मानक है, जो क्वालिटी मैनेजमेंट सिस्टम (क्यूएमएस) की आवश्यकताओं को निर्दिष्ट करता है। आईएसओ—9001:2015 दुनिया का सबसे मान्यता प्राप्त मानक है। इसका उपयोग दुनिया भर के 160 से अधिक देशों में 10 लाख से अधिक संगठनों के द्वारा किया जाता है।

विद्यार्जन की अभीप्सा हेतु विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में ब्राजील, अर्जेंटीना एवं इटली से 27 लोगों के समूह का आगमन हुआ। पतंजलि योगसूत्र के पठन-पाठन के लिए विश्वविद्यालय आगमन पर समूह के सभी सदस्यों ने प्रतिकुलपति जी से भेंट की। तत्पश्चात सभी लोगों ने एशिया के प्रथम बाल्टिक शिक्षा एवं संस्कृति केंद्र का भ्रमण किया।

हांगकांग से भी 11 लोगों के एक समूह का आगमन देव संस्कृति विश्वविद्यालय में हुआ। यह समूह विशेषकर भारतीय संस्कृति, योग और आयुर्वेद को जानने व समझने के लिए आया था। इस दौरान प्रतिकुलपति जी ने मानवीय उत्कर्ष, मानवीय मूल्य,पूज्य गुरुदेव का दर्शन, योग और भारतीय संस्कृति से उन्हें परिचित कराया। इसी शृंखला में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में अमेरिका से 12 लोगों के एक समूह का आगमन हुआ। यह समूह अपनी दो दिवसीय कार्यशाला के अंतर्गत विशेषकर योग और आयुर्वेद जानने व समझने के लिए आया।

इसी क्रम में विश्वविद्यालय परिसर में अर्जेंटीना एवं ब्राजील से 14 शिक्षकों का आगमन हुआ। इस दौरान शिक्षकों के इस समूह ने भारतीय योगपद्धति एवं आयुर्वेद विज्ञान के बारे, जाना और समझा। विश्वविद्यालय आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की व देव संस्कृति विश्वविद्यालय का

भ्रमण भी किया एवं विश्वविद्यालय में हो रही गतिविधियों की सराहना की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में कार्यक्रमों की शृंखला के क्रम में हर साल की भाँति इस साल भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उत्सव—2023 मनाया गया। उत्सव 2023 का आगाज विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति जी, प्रतिकुलपति जी, आदरणीय कुलसचिव जी ने परम श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के मार्गदर्शन में किया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय के सभी सम्माननीय संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, आचार्यगण और सभी प्रतिभावान विद्यार्थी उपस्थित रहे। कार्यक्रम की शुरुआत परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी को नमन करते हुए दीप प्रज्वलित कर की गई।

विदित हो कि हर साल उत्सव के दौरान लगभग 75 से ज्यादा खेल और 50 से ज्यादा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसमें बड़े ही जोश, उत्साह के साथ विद्यार्थी प्रतिभाग करते हैं। विश्वविद्यालय में चल रहे तीन दिवसीय उत्सव—2023 के कार्यक्रम का समापन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से किया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं अखिल विश्व गायत्री परिवार प्रमुख परम श्रद्धेय डॉ. प्रणव पंड्या जी उपस्थित रहे।

परम श्रद्धेय कुलाधिपति महोदय ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए कहा कि मैं विश्वविद्यालय में प्यारे-प्यारे बच्चों के कार्यक्रम को देखकर और ऊर्जावान हो गया।

वे बोले—"इस पूरे कार्यक्रम के लिए विश्वविद्यालय में कार्यरत सभी सदस्यों को धन्यवाद एवं शुभकामनाएँ देता हूँ। जैसी परमपूज्य गुरुदेव ने संकल्पना की थी, वैसा विश्वविद्यालय का दृश्य इस कार्यक्रम में दिखाई दे रहा है।"

इस कार्यक्रम में आदरणीय कुलपति महोदय, प्रतिकुलपति महोदय, आदरणीय कुलसचिव महोदय, सभी सम्माननीय संकायाध्यक्ष, आचार्यगण एवं प्रतिभावान विद्यार्थी उपस्थित रहे। शैक्षणिक संगोष्ठियों की शृंखला में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में केंद्रीय पुस्तकालय द्वारा 'पुस्तकालय प्रणाली पर सूचना संचार तकनीकी का प्रभाव' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. एच.जी. होसामणी साइंटिस्ट ई(इंफ्लीबनेट यू.जी.सी.) तथा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलसचिव जी, शैक्षणिक संकायाध्यक्ष, छात्र कल्याण विभाग के अध्यक्ष एवं पुस्तकालयाध्यक्ष भी उपस्थित रहे। दीप प्रज्वलन, विश्वविद्यालय कुलगीत एवं सरस्वती वंदना के साथ अतिथियों का स्वागत और स्मृतिचिह्न भेंट कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया।

स्वागत भाषण में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्ष महोदया ने कहा—"सभी प्रकार की भौतिक संपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, किंतु ज्ञानधन हर स्थिति में मनुष्य के पास रहता है और दिनोदिन विकास करता है।" उन्होंने आगे कहा कि परमपूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से यह पुस्तकालय अपने उच्च शिखर तक पहुँच रहा है।

पुस्तकालयाध्यक्ष महोदया ने 21 वर्षों की देव संस्कृति विश्वविद्यालय के केंद्रीय पुस्तकालय की यात्रा को बताते हुए कहा—"इस पुस्तकालय की शुरुआत 2001 में लगभग 2000 पुस्तकों से हुई थी। वर्तमान में 46000 पुस्तकें , प्रिंट जर्नल्स, पत्रिका, समाचार बाउंड वॉल्यूम लगभग 1500 एवं 25000+ ई-रिसोर्सेस उपलब्ध हैं।" इस अवसर पर मुख्य अतिथि, प्रतिभागी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा विद्यार्थी उपस्थित रहे।

विभिन्न कार्यक्रमों के इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा विभागांतर्गत राज्यस्तरीय दो दिवसीय नैक प्रत्यायन हैंड होल्डिंग प्रशिक्षण कार्यशाला का उद्घाटन किया गया। कार्यक्रम में उत्तराखंड के गढ़वाल मंडल के अनेक विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों से संकाय एवं शिक्षकगणों के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सभी आचार्यगण उपस्थित रहे।

दो दिवसीय विशेष कार्यशाला का शुभारंभ दीप प्रज्वलन कर किया गया। जिसमें उत्तराखंड उच्च शिक्षा विभाग के सचिव श्री शैलेश बगौली जी, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति जी, आदरणीय कुलसचिव जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

उच्च शिक्षा विभागांतर्गत राज्यस्तरीय दो दिवसीय नैक प्रत्यायन कार्यशाला के समापन के कार्यक्रम में उत्तराखंड के उच्च शिक्षामंत्री माननीय डॉ. धनसिंह रावत जी उपस्थित हुए।

गढ़वाल मंडल के सभी विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों से आए सभी कुलपति, विभागाध्यक्ष एवं आचार्यगणों को संबोधित करते हुए माननीय शिक्षामंत्री धनसिंह रावत जी ने कहा—''हमें नई शिक्षानीति को लागू करके शिक्षा के स्तर को और बढ़ाना है। छात्रों का बहुमुखी विकास किस तरह हो यह बात हम सभी को ध्यान देने की आवश्यकता है और यदि यह सब संभव हुआ तो आने वाले समय में बाकी राज्य, शिक्षा को लेकर उत्तराखंड के प्रारूप का अनुगमन करेंगे।''

वहीं कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा—''हमें भारत, भारतीयता और अपनी संस्कृति को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना होगा।'' कार्यशाला के दूसरे दिन मुख्य अतिथि के रूप में उत्तराखंड के उच्च शिक्षामंत्री माननीय डॉ. धनसिंह रावत जी, शासन अपर सचिव, उच्च शिक्षा श्री प्रशांत आर्य जी, डॉ. जगदीश प्रसाद, निदेशक उच्च शिक्षामंत्री, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति महोदय, प्रतिकुलपति महोदय एवं कुलसचिव महोदय उपस्थित रहे। इस सत्र के दौरान अंतरराष्ट्रीय अनुबंध, विशेष शिक्षा प्रणाली जैसे महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा की। कार्यक्रम का समापन राष्ट्रगान के साथ किया गया।

विदित हो कि उत्तराखंड के गढ़वाल के विभिन्न महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के संकायाध्यक्ष एवं शिक्षकगणों की उपस्थिति में उच्च शिक्षा में विकासपूर्ण कार्य के बारे में कई महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ हुईं। इस कार्यशाला का प्रमुख उद्देश्य नैक की विभिन्न चुनौतियों, समस्या के समाधान एवं नए आयामों तक पहुँचने की रणनीति रही।

राष्ट्रीय उच्चायन एवं प्रत्ययन परिषद् अर्थात नैक के अंतर्गत 415 उच्च शिक्षा संस्थानों को हो रही गुणवत्ता निमित्त चुनौती, बेस्ट ग्रेडिंग से महाविद्यालयों के बीच प्रतिस्पर्धा, अंतिम उद्देश्य का छात्र-छात्राओं के हित में कार्य, स्वरोजगार के पैमाने, डेटा संग्रहण कर किस तरह से अनेक कार्यों की योजनाओं पर चर्चा हुई।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एनसीसी कैडेटों द्वारा पुनीत सागर अभियान की पहल की गई। इसमें कुल 50 कैडेटों ने भाग लिया। प्रतिकुलपति महोदय जी के मार्गदर्शन में लेफ्टिनेंट श्री पवन राजोरिया जी द्वारा इस विशेष आयोजन को लेकर पहल की गई।

सभी कैडेटों की प्रेरणा के लिए कुलसचिव जी ने स्वच्छता अभियान पर पूज्य गुरुदेव के स्वच्छ शरीर, स्वच्छ मन अपना, सभ्य समाज बनाएँगे के सूत्रों को दोहराया। कैडेटों ने सड़कों पर झाड़ू लगाया और रिहायशी इलाकों के कोनों से कचरा इकट्ठा किया व साथ ही स्वच्छता के प्रति लोगों को जागरूक किया। इस तरह विश्वविद्यालय अनेकों कार्यक्रमों से लाभान्वित हुआ। ❑

श्रद्धा एवं पात्रता के जागरण का पर्व

गुरु पूर्णिमा का पर्व श्रद्धा की अभिव्यक्ति का पर्व है। श्रद्धा हमारी आत्मिक जगत् की समस्त उपलब्धियों का आधार कही जा सकती है। यदि श्रद्धा के मूल्य व महत्त्व को समझा जा सके तो निश्चित रूप से उसका जो परिणाम निकलकर के आता है वह हर दृष्टि से साधक एवं शिष्य के लिए गौरव प्राप्ति का कारण बनता है। इस पर्व का मूल उद्देश्य एवं मूल आधार हम इसी एक उपलब्धि को मान सकते हैं।

भारतीय एवं वैदिक चिंतन में दो तरह के संसारों की बात कही गई है। पहले को हम स्थूल जगत् तो दूसरे को सूक्ष्म जगत् कहकर के पुकारते हैं। दोनों के गुणों एवं संरचना में भी तात्त्विक दृष्टि से भेद हैं। वह भेद ही उनकी भिन्नता का आधार है। इनमें से एक पदार्थ का तो दूसरा चेतना का जगत् है। एक दिखाई पड़ता है तो दूसरा दिखाई नहीं पड़ता। एक आँखों के सामने होने के कारण प्रत्यक्ष कहलाता है तो दूसरा अदृश्य होने के कारण परोक्ष।

इनमें से बाहर के जगत् में, लौकिक-सांसारिक-भौतिक जगत् में किसी भी घटना को घटाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। बिना ऊर्जा के प्रवाह के यहाँ कुछ संभव नहीं है। स्थिर दिखते पदार्थों में भी स्थिर ऊर्जा है, जिसे वैज्ञानिक स्टेटिक एनर्जी कहकर पुकारते हैं तो वहीं रासायनिक क्रियाएँ केमिकल एनर्जी का परिणाम कही जाती हैं। नाभिकीय ऊर्जा परमाणु विस्फोटों को जन्म देती है तो वहीं मशीनों को चलाने के लिए यांत्रिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि इस संसार में यदि ऊर्जा की हलचलें न हों तो यहाँ कुछ घटेगा नहीं, सन्नाटा ही व्याप्त रहेगा।

जिस तरह से बाह्य जगत् में घटनाक्रमों को घटाने के लिए ऊर्जा की लहरों की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही आंतरिक-आत्मिक-आध्यात्मिक जगत् में घटनाओं को घटाने के लिए श्रद्धा की आवश्यकता होती है। श्रद्धा हो तो प्रह्लाद की पुकार पर भगवान खंभा फाड़कर बाहर निकलते हैं, श्रद्धा हो तो एकलव्य की पुकार पर मिट्टी की मूर्ति भगवान बन जाती है और श्रद्धा हो तो पत्थर की प्रतिमा न केवल मीरा के लिए भगवान कृष्ण में बदलती है, बल्कि वह उनके लिए विष पीती भी नजर आती है।

यह श्रद्धा की ही ताकत थी, जिसने नल-नील के उछाले पत्थरों को पानी पर तैरने की ताकत प्रदान की। यह श्रद्धा की ही शक्ति है, जिसके कारण पत्थर देवता में बदल जाते हैं, प्रतिमा ईश्वर बन जाती है और मिट्टी भगवान बन जाती है। आध्यात्मिक जगत् में संतों के संतत्व का आधार श्रद्धा है और गुरु पूर्णिमा की गुरुता का आधार भी श्रद्धा ही कही जा सकती है।

श्रद्धा के साथ एक और विशेष बात जुड़ी है और वह यह कि बाह्य जगत् की ऊर्जा की एक सीमा है। शारीरिक ऊर्जा की, बौद्धिक ऊर्जा की, कुशलता की, संपदा की—इन सबकी एक सीमा है। एक हद तक ही शरीर में बल हो सकता है,

एक हद तक ही बुद्धि की, मन की पहुँच हो सकती है तो इनके समय, सामर्थ्य सबकी एक सीमा है। एक दिन शरीर भी छूटता है, बुद्धि चातुर्य भी एक दिन कमजोर पड़ते हैं, एक दिन पैसा भी कम होता है और एक दिन चक्रवर्ती सम्राट का पद भी छूटता है।

चक्रवर्ती सम्राट के पद एवं सामर्थ्य की एक सीमा है, परंतु श्रद्धा असीम है, अनंत है। इसका अंत कर पाने की सामर्थ्य न तो काल में है और न समय में; क्योंकि श्रद्धा होती ही उसके पास है, जो स्वयं को भी गँवा करके बैठा है। श्रद्धावान तो वह है, जिसके पास खोने को कुछ नहीं, मात्र पाने को है। ऐसा इसलिए; क्योंकि सच्ची श्रद्धा जन्म ही तब लेती है, जब हम खुद को खो बैठते हैं। खुद को खो देने वाले, स्वयं को समर्पित कर देने वाले असीम हो जाते हैं। जिसने अपने होने का अधिकार भी परमात्मा को दे दिया, फिर वह अनंत आकाश की तरह से हो जाता है।

इसीलिए संत कबीर ने लिखा है कि

प्रेम गली अति साँकरी, जा में दो न समाहिं।
जब 'मैं' था तब हरि नहिं, अब हरि हैं 'मैं' नाहिं॥

अर्थात ईश्वर से अनुराग का श्रद्धा का पथ बड़ा ही सँकरा है, इसमें दो नहीं चल सकते। यदि 'मैं' अर्थात अहंकार रहेगा तो वहाँ हरि नहीं हो सकते और यदि वहाँ भगवान हैं, हरि हैं तो 'मैं' के होने की वहाँ कोई संभावना नहीं।

आध्यात्मिक जगत् का स्पष्ट सिद्धांत है कि जिसमें श्रद्धा आती है, उसमें अहंकार जाता है और साहस आता है। जो पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी पर भरोसा करके आग में कूदने का साहस रखता है, उसके लिए चिता भी फूलों का बाग बन जाती है। गुरु पूर्णिमा के पर्व की पुकार एक ही है और शाश्वत है। यह पर्व हर शिष्य, हर भक्त, हर साधक से कहता है कि हम अपने भीतर श्रद्धा जगाएँ, अहंकार मिटाएँ और स्वयं को गुरुसत्ता के दिए कार्यों में लगाएँ।

सोचें हम कि न जाने कितने जन्मों का पुण्य एक साथ उदय हुआ है कि आज तपस्या के शिखर, ज्ञान के सूर्य, भक्ति के सागर—पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के इस महायज्ञ में धूल का कण बनने का अवसर मिला है। हजार वर्षों में कभी एक बार सौभाग्य जागता है तो लकड़ी अँगारा बन पाती है, बाँस का पेड़ वंशलोचन बन पाता है, स्वाति की बूँद मोती बन पाती है और कोयला हीरा बन पाता है। ये बनाने का कार्य जो शक्ति करती है, वो है श्रद्धा और गुरु पूर्णिमा का पर्व उसी श्रद्धा के जागरण का पर्व है।

श्रद्धा के भीतर इतनी ताकत है कि वो सामान्य को असामान्य बना देने का कार्य कर देती है। श्रद्धा आ जाती है तो रीछ-वानरों को पानी पर पत्थर तैराने की शक्ति से भर देती है, ग्वाल-बालों में गोवर्धन उठाने के संकल्प को जगा देती है, गिलहरी में समुंदर को सुखाने का भाव भर देती है। सही अर्थों में क्षुद्र को महान बना देने की, मानव को महामानव बना देने की सामर्थ्य श्रद्धा में है।

गुरु पूर्णिमा का पर्व यही प्रेरणा देता है कि हम अपनी क्षुद्रता को मिटाकर अपनी श्रद्धा को जगा दें और गुरुदेव को घर-घर तक पहुँचाने का संकल्प अपने भीतर जगा दें। स्वयं को तपाने से जिस ऊर्जा का प्रवाह हमारी चेतना में होता है वो श्रद्धा है और श्रद्धा का जागरण मनुष्य को आध्यात्मिक सद्गुणों से अभिपूरित करके जाता है।

श्रद्धा का यह जागरण पात्रता के अभिवर्द्धन के बिना संभव नहीं हो पाता है। भौतिक दृष्टि से सफलता प्राप्त करने के लिए निश्चित अर्हता की आवश्यकता होती है। शिक्षा से लेकर व्यवसाय के

क्षेत्र में व्यक्ति उपेक्षित अर्हता के बिना कुछ प्राप्त नहीं कर पाता। यदि कोई धोखाधड़ी से, झूठ बोलकर या अपराध करके कुछ प्राप्त कर भी ले तो वो सफलता बहुत दिनों तक टिक नहीं पाती है। जिस तरह संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए और प्राप्त सफलता को स्थिर बनाए रखने के लिए अर्हता की जरूरत होती है—उसी तरह से अलौकिक जगत् में श्रद्धा के साथ पात्रता अनिवार्य हो जाती है।

गुरु पूर्णिमा का पर्व श्रद्धा एवं पात्रता के जागरण का पर्व है। यह क्षेत्र त्यागी, तपस्वी व्यक्तियों के लिए सुरक्षित है। आध्यात्मिक जगत् की उपलब्धियाँ बिना पात्रता बढ़ाए और बिना श्रद्धा जगाए किसी को नहीं मिलतीं। जब ये दोनों कार्य हम करते हैं तो हम सही अर्थों में आध्यात्मिक संभावनाओं की प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। आध्यात्मिक उत्कर्ष का आधार यही है कि शक्तियों का जागरण हमारा अभीष्ट होना चाहिए। ❑

खलीफा उमर ने एक बार एक फरिश्ते को कंधे पर मोटी-सी पुस्तक उठाकर ले जाते हुए देखा। फरिश्ते से पूछने पर पता चला कि पुस्तक में खुदा की इबादत करने वालों के नाम हैं। खलीफा ने फरिश्ते से पुस्तक माँगकर उसके पन्ने पलटे तो उन्हें अपना नाम कहीं दिखाई नहीं दिया।

खलीफा ने सोचा कि हो सकता है कि मेरी इबादत में कहीं कोई कमी रह गई हो और वे फिर से अपना काम करने में जुट गए। कुछ दिनों बाद उन्होंने उसी फरिश्ते को एक छोटी-सी किताब ले जाते देखा।

इस बार उससे पूछने पर पता चला कि किताब में उन लोगों के नाम हैं, जिनकी इबादत खुदा करता है। खलीफा को आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा—"भला ऐसा कौन होगा, जिसकी इबादत खुदा करता होगा।"

फरिश्ते ने उत्तर दिया—"जो लोग सबके अंदर खुदा के ही रूप को देखते हैं; सबके साथ प्यार, इज्जत के साथ पेश आते हैं; इनसानियत के उसूलों को अपनाते हैं वो खुदा की नजर में सबसे ऊपर होते हैं। उत्सुकतावश खलीफा ने किताब खोलकर देखा तो पाया कि उस सूची में सबसे ऊपर उन्हीं का नाम था।

गुरुसत्ता को नमन करें

पूर्ण समर्पण भाव से साथी, गुरुसत्ता को नमन करें।
राग-द्वेष के भावों का नित, मन से अपने शमन करें॥

गुरुसत्ता की महिमा गाएँ, रोम-रोम में रमे वही।
साँस-साँस में व्याप्त रहे नित, कर्म-भाव में रहे वही।

दिव्य भाव से गुरुसत्ता के, एहसासों में रमण करें।
पूर्ण समर्पण भाव से साथी, गुरुसत्ता को नमन करें॥

गायत्री की ज्योति निरंतर, जग को दे हरपल उजियार।
गुरुसत्ता के दिव्य प्रभाव से, जग में फैले चहुँ दिसि प्यार।

ईर्ष्या और घृणा मिट जाए, ऐसा जग में चलन करें।
पूर्ण समर्पण भाव से साथी, गुरुसत्ता को नमन करें॥

ब्रह्मवर्चस फैले दुनिया में, विचार-क्रांति हो हर जन में।
गुरुसत्ता के दिव्य प्रभाव से, नवल शांति हो जन-गण में।

दसों दिशाओं में अब साथी, प्रज्ञा-मित्र सब गमन करें।
पूर्ण समर्पण भाव से साथी, गुरुसत्ता को नमन करें॥

—डॉ० योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

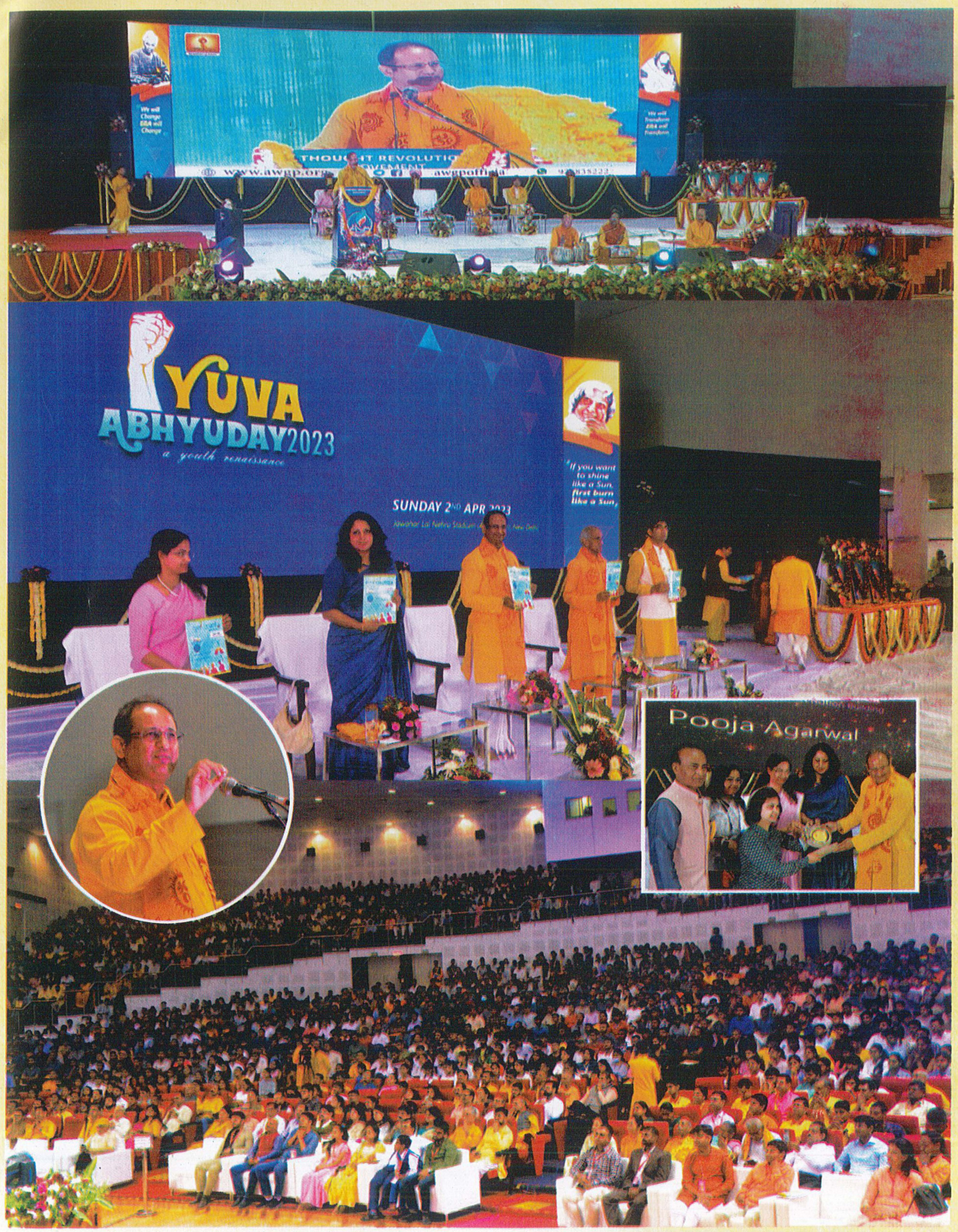

गायत्री परिवार के युवाओं द्वारा संचालित रचनात्मक इकाई (DIYA-Divine Indian Youth Association) द्वारा नई दिल्ली में आयोजित 'युवा अभ्युदय–2023' आयोजन में युवाओं की सक्रिय भागीदारी

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-06-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

सालीटांडा, बड़वानी (मध्य प्रदेश) आदिवासी बहुल क्षेत्र में अभूतपूर्व उत्साह के साथ संपन्न हुआ 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ कार्यक्रम में मुख्यमंत्री (मध्य प्रदेश) श्री शिवराज सिंह चौहान जी की गरिमामयी उपस्थिति

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल—akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org